रत्न-परिचय

PRECIOUS STONES

पुस्तक-परिचय

बहुमूल्य पत्थर कहिये या महारत्न और चाहे नवरत्न कुछ ऐसे खनिज हैं जो अपने सौंदर्य, टिकाऊपन, दुर्लभता तथा दैवी शक्तियों के आश्चर्यजनक प्रभावों के कारण मनुष्य के मन पर गहरी छाप रखते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक प्राचीन भारतीय शास्त्रों तथा आधुनिक रत्नविज्ञान सम्बन्धी नूतन खोजों के आधार पर तैयार की गयी है। प्रथम भाग में रत्न किन विशेषताओं के कारण इतना ऊंचा स्थान रखते हैं? उनके क्या रहस्य हैं उनमे दैवी शक्ति किस प्रकार ज्योतिष के अनुसार है ? आदि प्रश्नों का समाधान दिया गया हैं।

रत्नों का ज्योतिष में प्रयोग शीर्षक से दूसरे भाग में कुण्डलियों के उदाहरण देकर, उन्नति में रुकावट, दिल का दौरा (HEART ATTACK) दमा का रोग, फेफड़ों का क्षय, मानसिक कष्ट, आमाशय दोष रक्त सम्बन्धी दोष आदि पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरे भाग में नव रत्नों का पृथक् पृथक् वर्णन करते हुए उनकी पहचान की विधियाँ तथा कौन सा रत्न कब, किस वजन का और कैसे धारण करना चाहिये और यदि कीमती रत्न न ले सकें तो उसका बदल (SUBSTITUTE) क्या है बताया गया है। चौथे भाग में उपरत्नों का वर्णन है।

पुस्तक जहाँ जन साधारण के लिए उपयोगी है वहाँ ज्योतिष प्रेमियों, चिकित्सक वर्ग एवं इसके व्यवसाय में रुचि रखने वालों के लिए अनमोल रचना है।

विद्वान लेखक का यत्न यह रहा है कि प्रत्येक प्रकार की नवीनतम जानकारी तथा वैज्ञानिक विषयों का वर्णन सरल भाषा में दिया जाय अर्थात् इस रूप में यह संग्रह संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी साहित्य का संक्षिप्त सार-भूत निचोड़ और पूर्ण परिश्रमशील कार्य है।

मूल्य पांच रुपये डाक खर्च १.५० अलग

उपयोगी साहित्य माला—५

रत्न-परिचय

AN INTRODUCTION TO PRECIOUS STONES

संग्रहीता-लेखक :
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार
ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन

प्रकाशक
गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली-६

प्रकाशक :
गोयल एण्ड कम्पनी
दरीबा, दिल्ली-६

मूल्य : [illegible] रुपये

प्रथम संस्करण :
दीपावली, संवत् २०२७

मुद्रक :
राष्ट्रभाषा कम्पोजिंग एजेन्सी
दिल्ली-६

एक दृष्टि में

भारत में रत्न धारण प्रथा पुरानी
रत्नों में दैवी शक्ति कोरा अन्ध विश्वास
वहम अथवा बहकावा ? नहीं !
असली और नकली की पहचान
लग्न के अनुकूल रत्न चुनिये
स्त्रियों के लिये चुनाव का विशेष नियम
अनिष्ट ग्रह को और बलवान् न बनने दीजिये
नौकरी में उन्नति रुके तो कौन सा रत्न पहने ?

माणिक्य—विपदा का पूर्व सूचक
मोती—हृदय को बलदायक
मूँगा—सस्ता पर अधिक गुणी
पन्ना—नेत्रशक्ति का मित्र
पुखराज—कुष्ठ और बवासीर का शत्रु
हीरा—वैवाहिक जीवन में मधुरता
नीलम—शीघ्र प्रभाव दिखानें वाला,
गंज और रूसी में लाभप्रद
गोमेदक—चर्म रोगों में विशेष लाभदायक
लहसनिया—दुर्घटना तथा शत्रुओं से बचाने वाला
उपरत्न—पन्द्रह उपरत्नों का वर्णन

शोध पूर्ण रचना—(Research Work)

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक जिज्ञासु पाठकों के हाथ में समर्पित करते हुए इस के सम्बन्ध में दो शब्द कहना भी उचित होगा। पुस्तक की सामग्री संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी के प्रामाणिक तथा आधुनिकतम ग्रन्थों से ली गयी है। जिन ग्रन्थों से सामग्री ली गयी है वे ज्योतिष, चिकित्सा, खनिज विज्ञान तथा रत्न-विज्ञान से सम्बद्ध हैं। नूतनतम अंग्रेजी-हिन्दी के विश्वकोषों का भी उपयोग किया गया है। अभिप्राय यह है कि रत्नों के सम्बन्ध में जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिये, यथासम्भव, सुशीतल और सुमधुर, "पुष्टिप्रद पेय जुटाने का यत्न किया गया है। और साथ ही ठोस विषय के रहस्य को समझाने के लिये सुबोध परन्तु साथ ही वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग किया गया है। आशा है कि पाठक इसका सदुपयोग कर सकेंगे।

संकलनकर्ता उन सब ग्रन्थ लेखकों तथा सहायकों का भी आभारी है कि जिनकी रचनाओं से यह सामग्री ली गयी है, यद्यपि सब स्थानों पर सबका नाम लेना सम्भव नहीं हुआ है।

दीपावली, संवत् २०२७
२९ अक्तूबर, सन् १९७०

संग्रहीता
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

प्रकाशन-पथ पर

ज्योतिष साहित्य में अचरज पूर्ण ग्रन्थ

उत्तर कालामृत

रचनाकार —कवि कालिदास
व्याख्याकार—ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन

ज्योतिष जगत् इसके फलित पर मुग्ध है

मूल्य दस रुपये

रत्नों पर और अधिक जानकारी के लिये
आधुनिक खोजों पर आधारित

रत्न-प्रदीप

ADVANCED STUDY OF GEMS

प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ तैयार हो रहा है।

मूल्य बीस रुपये

पता :—

गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली-६

विषय-सूची

रत्नों का सामान्य परिचय

रत्नों का सामान्य परिचय

प्राचीनता तथा प्रभाव

: १ :

ऋग्वेद के पहले ही मंत्र में 'रत्न' शब्द : अग्नि व ताप से रत्नों की रचना : भारत में रत्नधारण की प्रथा पुरानी : रोगों-से बचा रखने तथा उनको दूर करने की रत्नों की शक्ति : रत्नों में दैवी शक्ति : क्या यह कोरा अन्धविश्वास है ? नहीं : प्रयोग करने के वालों के अपने-अपने अनुभव ।

'रत्न' शब्द की प्राचीनता—जहां तक 'रत्न' शब्द की प्राचीनता का सम्बन्ध है, संसार के सब से अधिक प्राचीन शब्दों में इसकी गिनती है। आज सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि 'ऋग्वेद' संसार का सबसे पहला ग्रन्थ है। वैदिक धर्मी तो वेदों को परम पिता परमात्मा की वाणी मानते ही हैं। उनके लिये तो इससे अधिक प्राचीन ग्रन्थ कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। परन्तु पश्चिमी विद्वान् भी 'ऋग्वेद' से अधिक प्राचीन किसी ग्रन्थ की खोज आज तक नहीं कर पाये हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में 'रत्न' शब्द आया है। इस महान् ग्रन्थ के सबसे पहले ही मंत्र में 'अग्नि' को 'रत्नधातमम्' कहा है। (**अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्न-धातमम् ।** ऋ० १-१-१) ।

वेदों के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक आदि अनेक प्रकार से अर्थ किये जाते हैं। आधिभौतिक अर्थ से यहां यह बात तो सर्वथा स्पष्ट है कि अग्नि रत्नों या पदार्थों का सर्वोत्तम धारक और उत्पादक है। इस पद (धातमम्) में आये 'धा' धातु के अनेक अर्थों में एक अर्थ उत्पन्न करना भी है।

अग्नि को रत्न पदार्थों का उत्पादक कहने से क्या-क्या अभिप्राय हो सकते हैं—इसका विस्तार से विवेचन करना प्रसंग से बाहर की बात है। परन्तु इससे इतनी बात तो सर्वथा स्पष्ट ही प्रतीत होती है कि 'अग्नि' की शक्ति के सम्पर्क से 'रत्न' बनते हैं। आश्चर्य है कि आज के वैज्ञानिक भी इसी परिणाम पर पहुँचे हैं। रत्न कैसे बनते हैं—इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अमरीकी विश्वकोष ने 'Gemstones' शब्द पर टिप्पणी देते हुए स्पष्ट लिखा है कि 'अधिकांश रत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ताप-प्रक्रिया' के परिणाम हैं।' हां, असाधारण रूप से जब दशायें अनुकूल होती हैं—तभी विविध तत्वों के रासायनिक मेल से विविध रत्न बन पाते हैं। रत्नों के बनने की प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए आधुनिक वैज्ञानिक बताते हैं कि कार्बन आदि तत्त्वों के परमाणु बहुत अधिक ताप (गरमी) व अत्यधिक दबाव के प्रभाव में आ कर आपस में इतने और इस प्रकार जुड़ जाते हैं—संश्लिष्ट हो जाते हैं कि वे एक निश्चित क्रम अथवा व्यवस्था में आ जाते हैं। अब वे एक विशेष प्रकार के चमकदार पदार्थ बन जाते हैं—जिन्हें हम 'रवा' स्फटिक, मणिभ अथवा क्रिस्टल (Crystal) कहते हैं। पृथ्वी के भीतर इस प्रकार बने कुछ रवों में कई ऐसी अद्भुत विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं कि देखने वाले को वे प्यारे लगने लगते हैं—बस तो 'रत्न' पदार्थ वही कहलाये कि जिनमें मनुष्य का मन रमा; मनुष्य पहले पहल तो इनके ऊपरी सौन्दर्य से मुग्ध हुआ

और बाद में प्रयोग करके इनके गुणों पर मुग्ध हुआ। (**रमन्ते अस्मिन् अतीव अतः रत्नम् इति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशरदैः—आयुर्वेद प्रकाश ५-२**)।

अग्नि संयोग से रत्न-रचना—अग्नि अथवा ताप के संयोग से हुई तत्त्वों की एक विशेष व्यवस्था से 'रत्न' बनते हैं—आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस बात को आज तथ्य करके भी दिखा दिया है। सबसे पहले सन् १८७८ में दो फ्रांसीसी वैज्ञानिकों, 'फ्रेमी' तथा 'फील' ने प्रयोगशाला में माणिक्य-सा चमकीला पदार्थ बनाया। १९०४ में तो फिर फ्रांसीसी रसायन शास्त्री वरनुई ने संश्लिष्ट माणिक्य और नीलम बनाकर बाजार में भेज दिये। इससे पहले भी नकली रत्न बनाये जाते थे—परन्तु तब या तो काँच के मणके बनाकर उन्हें रत्नों जैसा रूप दे दिया जाता था अथवा असली रत्न के टूटे-फूटे, छोटे-छोटे टुकड़ों को गरमी देकर आपस में जोड़ दिया जाता था—और इन्हें 'पुनः बनाये गये' (recoustrncted) रत्न कहा जाता था। किन-किन रत्नों के नक़ली अथवा बनावटी रत्न बनाये जाते हैं—इसका वर्णन तो हम आगे चल कर उन रत्नों के प्रसंग में ही करेंगे—यहां तो हम यही दिखा रहे थे कि ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में 'रत्न' की रचना में 'अग्नि' की जिस महत्वपूर्ण भूमिका की ओर इशारा किया गया है, वह सर्वथा वैज्ञानिक सचाई है। आम बोल चाल में हम प्रत्येक जाति के सर्वोत्तम पदार्थ अथवा व्यक्ति को भी 'रत्न' कहते हैं। समुद्र मन्थन से जो चौदह रत्न देवताओं को मिले थे—वे संसार के सर्वश्रेष्ठ पदार्थ हैं। विक्रम ने अपनी सभा में अपने समय के सर्वश्रेष्ठ नौ विद्वान् एकत्रित किये थे—वे 'नव रत्न' कहलाते थे। आज भी हम 'पुरुष रत्न' आदि शब्दों का प्रयोग करते ही हैं। पुरुष भी तो किन्हीं विशेष नियमों का लगातार पालन रूप 'तप' कर के ही 'रत्न' की पदवी प्राप्त कर पाता है।

भारत में रत्नधारण की प्रथा—भारत में रत्नों के धारण करने की प्रथा बहुत पुरानी है। ऋग्वेद में 'रत्न' शब्द के आने की बात हम कह आये है। इसी वेद के छठे मंडल के १९ वें सूक्त के १० वें मंत्र में तो रत्न-धारण करने का संकेत स्पष्ट ही है। वेदों में 'वज्र' (हीरा) तथा भुजाओं पर व हाथ में, वज्रधारण करने वाले वृत्र का वध करने वाले इन्द्र का उल्लेख हुआ ही है। वैदिक साहित्य में इन शब्दों का कोई दूसरा अर्थ भी, भले ही रहा हो, परन्तु अग्नि-पुराण, गरुड़ पुराण, देवी भागवत, महाभारत, विष्णुधर्मोत्तर आदि प्राचीन ग्रन्थों में तो हीरा, माणिक्य, नीलम, पन्ना आदि विविध महारत्नों तथा रत्नों के नाम, प्राप्ति स्थान, विशेष लक्षण, गुण-दोष, उन की परख, शुभता-अशुभता आदि का काफ़ी विस्तार से वर्णन है। ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ वराह-मिहिर रचित **'बृहत्संहिता'** में रत्नों के गुण-दोषों का अच्छा खासा विवरण दिया है। **'भाव-प्रकाश,' 'रसरत्नसमुच्चय'** 'आयुर्वेद-प्रकाश' आदि चिकित्सा-ग्रन्थों में विविध रत्नों की भस्मों और पिष्टियों के बनाने के तरीके तथा रोगों में उनके प्रयोग के तरीके बताये हैं; साथ ही यह भी लिखा है कि केवल धारण करने से भी कितने ही रत्न अपनी रोग-नाशक शक्ति का चमत्कार दिखाते हैं। आगे चलकर संस्कृत के महाकवियों—अश्वघोष, कालिदास आदि ने रत्नों के रूपवैभव का उपयोग अपने पात्रों के लिये उपमान ढूँढने में किया है। अगस्ति-मत, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि नीति-ग्रन्थो में भी रत्नों की विस्तृत चर्चा है। प्राकृत भाषाओं में भी 'नवरत्न परीक्षा', 'रत्न संग्रह' 'रत्नसमुच्चय' आदि रत्नपरीक्षा विषयक अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। रत्नों के विषय में अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ भी इधर-उधर बिखरे सुनायी पड़ रहे हैं।

आभूषणों में नग (रत्न) जड़ने की कला का आविष्कार

भारतीयों ने ईसा से लगभग २८०० वर्ष पहले ही कर लिया था। रत्नों को घिस कर उस पर पहल देने का काम भी भारतीयों ने लगभग तभी शुरु कर दिया था, क्योंकि इस प्रकार का पहल दिया हुआ एक मनका सिंधुघाटी की सभ्यता के चान्हूदाडो नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। प्रसिद्ध विदेशी यात्री वर्नियर (१६ वीं सदी) के समय, जैसा कि उसने लिखा है, भारत में हीरों के प्राकृतिक घाटों पर ही पहलों की बंदिश की जाती थी और इस प्रकार उनके दोषों को छिपाया जाता था।

रत्नों में दैवी शक्ति—हमारे प्राचीन शास्त्रों तथा परम्परा से चली आ रही लोक श्रुतियों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय रत्नों की दैवी शक्ति में पूर्ण विश्वास करते थे। और उनका यह विश्वास कोरा अंधविश्वास ही रहा हो, यह भी नहीं कहा जा सकता। हमारे प्राचीन अनुभवी विद्वान् चिकित्सा शास्त्र पर अनेक दुर्लभ ग्रन्थ लिखकर छोड़ गये हैं। शार्ङ्गधर संहिता उनमें एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है; इस के दूसरे अध्याय का तेरहवाँ श्लोक इस प्रकार है :—

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
सम्बन्धेन क्रमादेताः पञ्चावस्थाः प्रकीर्तिताः ॥१॥

अर्थात् प्रत्येक वस्तु की अपनी पांच अवस्थायें अथवा गुण होते हैं—छः प्रकार के—मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा) आदि रस; गुरु (भारीपन), चिकनाई (स्निग्ध) आदि पांच गुण; उष्ण तथा शीत—ये दो वीर्य; मधुर, अम्ल तथा कटु—ये तीन विपाक (परिणाम) और प्रभाव अथवा शक्ति। इनमें चार अवस्थायें तो किसी भी वस्तु को खाने पर अपना-अपना रूप दिखाती हैं—परन्तु उसकी शक्ति अथवा प्रभाव का असर धारण करने से ही दिखाई देता है। जैसे आँवला रस, गुण, वीर्य तथा विपाक में बड़हल के

समान है परन्तु अपने प्रभाव से त्रिदोष का नाशक है। आगे वे लिखते हैं—

क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात् प्रभावतः।
ज्वरं हन्ति शिरो बद्धा सहदेवी जटा यथा॥ २-२२

प्रत्येक वस्तु में स्थित रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति (प्रभाव) अपना-अपना काम करते हैं। परन्तु कहीं-कही द्रव्य में रहने वाला प्रभाव ही अपना कौतुक दिखाता है। सहदेवी की जटा को सिर में बांध लेने पर बुखार जाता रहता है। बस, रत्नों में भी अपनी-अपनी शक्ति अथवा प्रभाव का होना सर्वथा सम्भावित है।

परन्तु जैसे विभिन्न-भिन्न वस्तुओं को जानवरों और आदमियों को खिला-खिलाकर उनको औषधि रूप में स्वीकार किया गया है; वैसे ही **रत्नों की शक्ति** का निश्चय भी अनेक प्रयोगों से ही सम्भव है। भिन्न-भिन्न रत्नों की क्या-क्या शक्तियां हैं; कौन सा रत्न, किस मात्रा में और कब धारण करना चाहिये—इस के विषय मे किये गये किन्हीं सुनिश्चित प्रयोगों और परीक्षणों का ब्यौरा हमें प्राप्त नहीं होता। फिर भी कुछ उल्लेख तो मिलते ही हैं—जैसे ज्योतिषी माणिक्य को सूर्य का, मोती को चन्द्रमा का, पुष्पराज अथवा पुखराज को वृहस्पति का, गोमेद (Hessonite) को राहु का, पन्ने को बुध का, हीरे को शुक्र का, बिडालाक्ष को केतु का और नीलम को शनि का प्रतिनिधि रत्न मानते हैं। अभिप्राय यह है कि जिन व्यक्तियों की जन्म कुंडली में ये-ये ग्रह पाप प्रभाव में हों अथवा निर्बल हों, उनको उनके प्रतिनिधि रत्न धारण करने चाहिये। इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न रत्नों के भिन्न-भिन्न जो प्रभाव बताये गये हैं अथवा सुनाये गये हैं—उन का मूल आधार सब पदार्थों में काम करने वाला यह सामान्य सिद्धान्त ही है कि प्रत्येक पदार्थ में रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति—ये पांच बातें प्रकृति से स्थित होती

हैं—और ये मिलाकर तथा अलग-अलग अपना-अपना काम करती हैं और **कहीं-कहीं तो द्रव्य केवल अपने प्रभाव (शक्ति) से ही अद्‌भुत कार्य करता दिखायी पड़ता है।** इस पुस्तक में प्रत्येक रत्न के वर्णन में इन शक्तियों का उल्लेख उचित स्थान पर किया गया है।

पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास की सम्मति—रत्नों के धारण करने के प्रभावों के सम्बन्ध में लिखते हुए प्रसिद्ध ज्योतिषी, पद्मभूषण श्री सूर्यनारायण व्यास ने 'रत्नों की वैज्ञानिक उपयोगिता और परिचय' शीर्षक लेख के अन्त में साररूप में निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—"विभिन्न रत्नों के विभिन्न प्रयोग और उनके परिणामों की गाथा अत्यन्त मनोरंजक है। हमारा अपना तो यह विश्वास है कि जिस ग्रह के प्रभाव से जो रत्न अथवा धातु प्रभावित है, उसका प्रयोग उस ग्रह के विकृत समय में, विचार-परीक्षण पूर्वक किया जाये तो आश्चर्यजनक परिणामकारी सिद्ध होता है। अवश्य ही उसका प्रयोग और परीक्षण, शरीर की प्रकृति के ग्रहजन्य प्रभाव के न्यूनाधिक स्वरूप में निर्माण के निर्णय के पश्चात् ही रत्नधातु के तत्त्व-सन्तुलन-दृष्टि से किया जाना ही उपयोगी हो सकता है। इसमें सूक्ष्मावलोकन क्षमता की अपेक्षा है।" ('रत्नपरीक्षा' जयपुर से साभार)

कोरा अन्धविश्वास, वहम अथवा बहकावा?—नहीं! आजकल के वैज्ञानिक इस बात को कोरा अन्धविश्वास ही मानते हैं कि रत्नों में कोई दैवी शक्ति होती है—वे कहते हैं कि जैसे होशियार जादूगर तरह-तरह के खेल दिखाकर लोगों को बहकाते हैं—ऐसे ही रत्नों में किसी प्रकार की दैवी शक्ति होने का विश्वास निरा वहम है और मनुष्य चतुर लोगों के बहकाने में आकर ऐसा समझने लगता है। परन्तु इतिहास की इस सच्चाई से कोई इन्कार नहीं

करता कि अति प्राचीन काल से संसार के सभी देशों में, सभी जातियों, सम्प्रदायों और भिन्न-भिन्न धर्मों के मानने वाले स्त्री-पुरुष रत्नों का आदर और सम्मान केवल शरीर आदि को सजाने के लिये ही नहीं करते थे—बल्कि रत्न, गण्डे और तावीजों—रक्षा-कवच के रूप में भी धारण किये जाते थे।

यूरोप की मान्यताएँ—यूरोप आदि पश्चिमी देशों की बात लीजिये—वहाँ शुरू-शुरू में अम्बर, मोती, मूंगा, माणिक्य, बिल्लौर और सुलेमानी पत्थर कीमती पत्थर माने जाते थे। जिन खनिजों के पहलू समतल और चमकते दिखायी दिये पहले पहल उन सभी को 'रत्न' माना गया। बाद में उनका विचार हुआ कि किसी पदार्थ को सच्चा रत्न बनाने के लिये सूर्य की गरमी की बहुत आवश्यकता है; कारण इसका सम्भवतः यह रहा होगा कि उस समय रत्न-पाषण पूर्वीय देशों—भारत, लंका, बर्मा आदि से ही उपलब्ध होते होंगे। और इसीलिये बेचने के लिये वे आवाज लगाते थे—'प्राच्य' बिडालाक्ष; 'प्राच्य' 'पुखराज: 'प्राच्य' पन्ना। यह बात ठीक ऐसी ही है कि जैसे कि सब्जी-फल बेचने वाले आवाज लगाते हैं, 'चमन के अंगूर' 'कश्मीरी सेव' 'कन्धारी अनार'—भले ही ये सभी अपने देश में पैदा हुए हैं। इसी कारण रत्नों के जो नाम आज प्रसिद्ध हैं, पहले उन्हीं रत्नों के दूसरे नाम प्रसिद्ध रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बाइबल में जो नाम आते हैं, आज उन्हीं नामों से प्रसिद्ध रत्नों के दूसरे नाम प्रचलित होना सर्वथा सम्भव है। जैसे भारत में ९ ग्रहों के प्रतिनिधि ९ भिन्न-भिन्न रत्न माने जाते हैं वैसे ही यहूदियों के बारह कबीलों के १२ भिन्न-भिन्न रत्न माने जाते थे। बाइबल में ऐसे-ऐसे वाक्य मिलते हैं—'साधु चरित्र वाली स्त्री को कौन खोज सकता है ? क्योंकि उसका मूल्य तो लालमणियों से भी अधिक होगा !" मैं तेरी नींव नीलमों से भरूंगा, तेरी खिड़कियां गोमेद-

कों की और दरवाजे मणिक्यों के बनाऊंगा और तेरे किनारे प्यारे-प्यारे रत्नों से सजाऊंगा।" मिश्र के रत्नों से मुहरें अथवा अंगूठियां भी प्राचीन समय में बनायी जाती थीं क्योंकि वहां से भूमि में दबे हुए मिश्री भृंग अथवा गुबरैले के आकार की कटी हुई मणियां आज निकाली जा रही हैं।

और बाद के जमाने में अरब तथा यूरोप के लोग रत्नों को क्या समझते थे—इस विषय में प्लिनी के लेख हमें बहुत कुछ बताते हैं। अम्बर की रचना के विषय में प्लिनी के विचार बड़े ही अद्भुत हैं—वह लिखता है कि फीटन की बहनें मजनू के पेड़ बन गयी थीं—उन्हीं के आंसू अम्बर बने। आज भी लोग यह मानते हैं कि अम्बर से गठिया आदि वायु-रोग शांत होते हैं। जर्मनी में लोग शिशुओं के गले में अम्बर मणिमाला बांधते थे—उनका विश्वास था कि इससे दांत निकलते समय उन्हें कष्ट नहीं होता। तुर्क लोग हुक्के की नली के अगले भाग में अम्बर इस प्रयोजन से लगाते थे कि इस प्रकार रोगजनक कीटाणु तंग नहीं करते। यूनानी समझते थे कि नीलम के प्याले से पी गयी मदिरा नशा नहीं करती। यहूदियों की मान्यता थी कि नीलम पहनने वाले को सुखद सपने आते हैं। रोमन स्त्रियों की मान्यता थी कि नीलम पहनने से उनके प्रति उनके पतियों का प्रेम स्थायी रहता है। एक जर्मन लेखक ने लिखा है कि लालमणि पहनने से चोरों का भय नहीं रहता। सर प्लैट (१५९४ ई०) ने लिखा है कि 'मूंगे पहनने वाला जब रोगी होने को होता है तो मूंगों का रंग फीका पड़ जाता है; और उसके अच्छा हो जाने पर उनका रंग फिर वैसा ही हो जाता हैं। जैसाकि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है और साहित्यिकों ने कल्पना की है कि स्वाती नक्षत्र के उदय होने पर वर्षा की जो बूंद सीपी के मुंह में पड़ती है, वही उसके पेट में जाकर मोती बन जाती है, प्लिनी और डायोस्कॉर्डिस

भी यही समझते थे। और आधुनिक समय की बातें लीजिये—कहते हैं कि रानी एलिजाबेथ ने जब रायल एक्सचेंज में सर थॉमस ग्रेशम से भेंट की तो वहां उसको स्वास्थ्य कामना के लिये सर थामस ने जिस प्याले में शराब पी थी उसमें १५००० पौंड मूल्य का मोती पीस कर डाला गया था। प्राचीन समय में मणिक्य को विषनाशक, शोक दूर करने वाला, मन को बुरे विचारों से दूर हटाकर सुविचारों में लगाने की शक्ति से युक्त, माना जाता था।

भिन्न-भिन्न प्रकार के रत्नों और महारत्नों और उपारत्नों के विषय में ऐसी ही मान्यताएँ न जाने कब से प्रचलित हैं और आज विज्ञान के युग में भी उन पर विश्वास रखने वाले लोगों की कमी नहीं है।

प्रतीत ऐसा होता है कि पदार्थों को शक्ति अथवा प्रभाव के सम्बन्ध में जिन लोगों ने प्रयोग किये उन्होंने जैसा देखा अथवा अनुभव किया वैसा लोगों को बताया; सम्भव है कि इनमें परस्पर विरोध अथवा अन्तर भी रहे हो। उदाहरण के लिये भारत के इतिहास में ऐसी कहानियां प्रचलित हैं कि लोगों ने विशेषतया राजकीय महिलाओं ने, अपने मान-सम्मान पर आयी विपत्ति के समय अंगूठी में की हीरे की कनी चाट कर अपने प्राण छोड़ दिये। परन्तु इसी सम्बन्ध में सन् १९४९ में लिखी 'रत्नावली' नाम की पुस्तिका के पृष्ठ ७९ पर अपने समय के प्रसिद्ध लेखक सूफी लक्ष्मण प्रसाद लिखते हैं—"......में जो यह लिखा है कि 'अल्मास (हीरा) चाटने से आदमी मर जाता है'—बिल्कुल गलत है; मैं स्वयं हजारों बार हीरा चाट चुका हूं और जीवित हूं।' आगे वे लिखते हैं हीरा पहनने से धन-दौलत मिलती है"—आदि।

रत्न चिकित्सा में नया प्रयोग—रत्नों की दैवी और रोगों की चिकित्सा सम्बन्धी शक्तियों के विषय में इधर कुछ नये प्रयोग भी

प्रकाशित हुए हैं। डा० विनयतोष भट्टाचार्य, एम. ए., पी-एच. डी. ने रत्न-चिकित्सा के नाम से एक विचारयोग्य पुस्तक लिखी है। उनकी मान्यता है कि 'रत्न चिकित्सा' की सहायता से विश्वशक्ति का एक बड़ा भाग मनुष्य के दुःख-कष्ट की शान्ति के लिये काम में लाया जा सकेगा।

आपके सिद्धान्त की रूपरेखा संक्षेप में इस प्रकार है—सात विश्व ज्योतियों से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है—सात मुख्य रत्न इस ज्योति के अक्षय भण्डार हैं। प्रत्येक रत्न को त्रिकोण कांच (Prism) से परीक्षा करके उसके असली विश्व रंग का ज्ञान हो जाता है। श्वेत पुखराज (moon-stone) अथवा सुनेला पुखराज (Topaz) देखने में श्वेत तथा सुनैले हैं, परन्तु त्रिकोण कांच से देखने पर उनमें आसमानी (Blue) रंग झलकता है ; अतः वे आसमानी विश्वरंग के भंडार हैं। इसी प्रकार चुन्नी लाल का, मोती नारंगी का, मूंगा पीली का, पन्ना हरी का, हीरा नीली का और नीलम बेंगनी विश्व-ज्योति के भंडार हैं। अब उन्होंने इसका सम्बन्ध रोलेंड हन्ट की 'वर्णचिकित्सा' से जोड़ दिया है। उदाहरण के लिये वर्णचिकित्सा के अनुसार गले के सब रोगों—गलक्षत, स्वरभंग, गलगंड आदि में, आन्तों की सूजन से उत्पन्न ज्वर, गांठयुक्त प्लेग, चेचक, खसरा, हिस्टीरिया, अपस्मार, दिल की धड़कन आदि रोगो में आसमानी रंग की आवश्यकता पड़ती है; अतएव इन में पुखराज से निर्मित गोलियों का प्रयोग लाभदायक रहेगा आदि।

रत्न-औषधियों को तैयार करने की उनकी विधिविशेष जटिल नहीं है। जिस रत्न की गोलियां तय्यार करनी हों, उसका एक या आधी रत्ती भार का नग लेकर, शुद्ध अल्कोहल में धोकर, एक औंस की शीशी में डाल दें। और शीशी में एक ड्राम शुद्ध अल्कोहल डाल दें। अब इस शीशी को काग से कस कर बन्द करके एक अंधेरे कमरे

में रख दें । सात दिन और सात रातों तक शीशी को रखा रहने दें । बाद में वहां से निकालकर शीशी को कुछ देर तक हिलायें और उसमें एक औंस २० नं० की दुग्ध शर्करा की गोलियां डाल दें और शीशी में गोलियों को ऊपर-नीचे हिलायें । गोलियां रत्नज्योतिर्मय अल्कोहल को चूस जायेंगी । अब गोलियों को निकाल कर सफेद कागज पर सुखालें और दूसरी सूखी साफ शीशी में भर कर रख दें । इस पर 'चुन्नी या मणिक्य या अमुक रत्न की गोलियां' लिख दीजिये । रत्न को धोकर सम्भाल कर रख लीजिये यह फिर काम आयेगा ।

इसी प्रकार सातों रत्नों की गोलियां तय्यार कर लीजिये और और आगे निर्दिष्ट रोगों में इन का प्रयोग कीजिये ।

आयुर्वेद और रत्न—प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों ने अपने देर तक किये गये अनुभवों के आधार पर विविध रोगों में रत्नों के प्रयोग की सलाह दी है । आयुर्वेद में इनका प्रयोग (१) इनकी भस्म बनाकर और (२) पिष्टी बनाकर किया जाता है । प्रत्येक रत्न भस्म अथवा पिष्टी के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिये । **परन्तु सावधान** ! भस्म बनाने की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है । किसी अत्यन्त विद्वान्, भस्म बनाने की कला में प्रवीण, वैद्य द्वारा बनायी गयी रत्न-भस्म का ही प्रयोग, चिकित्सापटु वैद्य की सलाह से करना चाहिये, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना है ।

यूनानी हकीमों का मत—यूनानी हकीम अग्नि द्वारा रत्नों की भस्म बनाना अच्छा नहीं मानते । उनका कहना है कि इस प्रकार तो रत्न एक प्रकार का चूना ही बन जाता है, अतएव उसमें रत्न के सारे गुण नहीं आते । वे रत्नों की पिष्टी (अत्यन्त सूक्ष्म चूरा) बना कर काम में लाते हैं । चरक और सुश्रुत में भी प्रवाल, मुक्ता और शंख आदि की पिष्टि (चूर्ण) के प्रयोग का विधान किया है । भस्मों

की अपेक्षा पिष्टियां ही अधिक लाभदायक प्रतीत होती हैं। कौन सा रत्न या उसकी भस्म या पिष्टी किस रोग में प्रयुक्त की जाती हैं—इसके लिये प्रत्येक रत्न के साथ ब्यौरा दिया गया है।

प्राचीन दिव्य गुण-विज्ञान में विश्वास रखने वाले विद्वान् रत्नों की दिव्य एवं ओषधिरूपा शक्ति की व्याख्या इस ढंग से भी करते हैं—प्राणियों और अप्राणियों—सभी में—इसीलिये रत्नों में भी चुम्बकीय शक्ति की धारायें विद्यमान हैं—इनसे निकलीं चुम्बकीय शक्ति-तरंगें चारों ओर फैलकर परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस प्राकर रत्नों का शुभ-अशुभ प्रभाव मनुष्य के शरीर तथा मन दोनों पर पड़ता है। इसीलिये रत्नों की सहायता से भविष्य वाणियां की जा सकती हैं—जापान का प्रत्येक गृहस्थ अपने पवित्र गृह में बिल्लौर (Pure Rock-crystal) का बना एक गोला रखता है। कहते हैं कि इस पर ध्यान लगाने वाले व्यक्ति की अभिलाषाओं को सुनकर वह पत्थर उत्तर देता है और ध्यान लगाने वाले की आत्मा उस उत्तर को समझ लेती है। यूनानियों का विश्वास था कि रत्नोपल अथवा दूधिया पत्थर का स्वामी यदि निस्वार्थ भाव से उस का प्रयोग करे तो उसको भविष्य दर्शन की शक्ति प्राप्त हो जाती है—स्वार्थ भावना से प्रयोग करने पर रत्नोपल स्वामी का अनिष्ट करता है। अनेक रत्न रोग नष्ट करने की शक्ति रखते हैं; कई रत्न व्यक्ति को बुद्धिमानों तथा महात्माओं का कृपापात्र बना देते हैं। कई रत्नों के धारण से बुद्धि बढ़ती है, शक्ति सामर्थ्य आती है और साहस बढ़ता है। कई विपदाओं तथा भयंकर दुर्घटनाओं से रक्षा करते हैं।

परन्तु ज्योतिष के अनुसार किस रत्न को किस समय तथा किस प्रकार धारण करना चाहिये, इस सम्बन्ध में एक विशेष लेख इसी पुस्तक के दूसरे खण्ड में प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् श्री जगन्नाथ

भसीन महोदय का लिखा दिया गया है। इसको ध्यान से पढ़िये। इससे स्पष्ट है कि **योग्य ज्योतिषी की सम्मति के अनुसार उचित रत्न का धारण करना ही ठीक है।**

भौतिक गुण

: २ :

रत्नों की उत्पत्ति के विषय में पुराण तथा आधुनिक विज्ञान के मत : पृथ्वी पर मिलने का स्थान : विभिन्न राष्ट्रों में कहाँ-कहाँ ? रत्नों के आकार : रत्नों के भौतिक-गुण कठोरता, आपेक्षिकघनत्व, चिराव और भंग।

रत्नखनिजों की उत्पत्ति—पुराणों में रत्न-खनिजों की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार की कथाएँ कही गयी हैं। एक दन्त-कथा के अनुसार बल-नाम के एक अत्यन्त बलवान् दानव के शरीर के विविध अंगों से रत्न बने; हड्डियों से हीरे, दांतों से मोती, रक्त से माणिक्य, पित्त से मरकतमणि, आँखों से इन्द्रनील, रस से वैडूर्य, मज्जा से कर्केतन, नखों से लहसनिया, मेद से स्फटिक, मांस से मूंगा, चर्म से पुखराज, शुक्र से भीष्म नामक रत्न बने। परन्तु प्रतीत होता है कि रत्नों की उत्पत्ति का यह वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से इन विविध रत्नों को विशेषताओं का लक्षक प्रतीक वर्णन मात्र है। हीरा देवताओं से भी अधिक महाबली दैत्य की हड्डियों की कठोरता का प्रतीक है: सचमुच ही हीरे से अधिक कठोर पदार्थ अभी तक नहीं मिला है। मोती की प्राच्य चमक सुन्दर दांतों की विशेषता है, पन्ना का हरापन पित्त के पीतिमायुक्त हरेपन से मिलता है। इन्द्रनील की चमक आँखों की चमक के सदृश है।

इत्यादि । जहाँ यह कथा दी गयी है, वहीं यह भी कह दिया है कि "**केचिद् भुवः स्वभावाद् वैचित्र्यं प्राहु रुपलानाम् ।**" अर्थात् कुछ लोग कहते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में पत्थर पड़े-पड़े पृथ्वी के स्वभाव से कई अद्‌भुत् विशेषताएँ धारण कर के 'रत्न' कहलाने लगते हैं । निश्चय ही रत्नों की उत्पत्ति एवं रचना का यही सिद्धान्त आज कल विज्ञान-सम्मत है । पृथ्वी के गर्भ में पड़े-पड़े उपल (पत्थर) भीषण ताप के प्रभाव से, अग्नि के प्रभाव से विचित्र-विचित्र गुण वाले बन जाते हैं और रत्न कहलाते हैं । हमारे शास्त्रों ने पृथ्वी को 'रत्न गर्भा' हिमालय को 'रत्नगिरि' और समुद्र को 'रत्नाकर' बताया है । हिमालय से मिलने वाले रत्न तो पृथ्वी के गर्भ से ही मिलते हैं; परन्तु मोती और मूंगा आदि जैविक रत्नों की खान महासमुद्र ही हैं । इसलिये महासमुद्र को 'रत्नाकर' कहा है ।

वैज्ञानिकों ने हीरा, माणिक्य, नीलम आदि महारत्नों का विश्लेषण कर के यह पता लगाया कि इसमें कौन-कोन से तत्त्व किस किस अनुपात में विद्यमान हैं और फिर उन्हें उसी अनुपात में लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार से ऊंचा ताप देकर जोड़ने का यत्न किया और इस प्रकार प्राकृतिक रत्नों जैसे ही गुणों वाले संश्लिष्ट रत्नों की रचना कर ली है । यह तथ्य भी इस बात का पक्का प्रमाण है कि रत्नों के निर्माण में ताप, ऊर्जा अथवा अग्नि का विशेष भाग है—शायद इसीलिये ऋग्वेद के पहले ही मंत्र में 'अग्नि' को 'रत्नधातम्' कहा है । जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं, सच्चाई यह है कि कोई भी पदार्थ, यहाँ तक कि मानव काम न और आत्मा भी, ताप या तप की भट्टी में तप कर ही 'रत्न' बनता है ।

रत्न कहां मिलते हैं—रत्न या तो अपने उत्पत्तिस्थान में मिलते हैं; अर्थात् उसी स्थान पर जहाँ कि पहले-पहल अनेक प्रकार की रासायनिक क्रियाओं से उनकी रचना हुई हो । अपनी जनकशिला में प्राप्त होने वाले रत्न हैं—बेरिल तथा टूर्मेलीनसमूह के रत्न ।

प्रायः ऐसा होता है कि मौसम की क्रिया के द्वारा रत्न अपनी जनक शिला से अलग हो जाते हैं और पानी उन्हें बहाकर दूर ले जाता है। नदी-नालों में निरन्तर लुढ़कते रहने के कारण ये रत्न-पत्थर घिस कर गोल हो जाते हैं। पानी का वेग घटने पर भारी पत्थर आगे नहीं बढ़ते परन्तु हलके आगे बढ़ जाते हैं। दूसरे पत्थरों से अलग होकर रत्नों वाले पत्थर धीरे-धीरे रेत तथा कंकड़ में बिखर जाते हैं—मानों पानी से धुलकर एक जगह बैठ जाते हैं। हीरे, लाल, नीलम आदि रत्न अधिकतर इसी रूप में पाये जाते हैं। इस पिछली दशा में मिलने वाले रत्नों को निकाल लेना काफी सुगम होता है। इन को निकालने में, उनके टूटने का डर बिलकुल नहीं रहता। इस दशा में मिलने वाले रत्न ऊँचे दर्जे के इस कारण भी होते हैं कि बहाव के समय उन पर लगे निरर्थक खनिज टूट कर अलग हो जाते हैं।

भूगोल के विभिन्न देश जहाँ रत्न मिलते हैं—रत्न, चूँकि पुरानी तथा कठोर चट्टानों में मिलते हैं, इस कारण रत्न प्रायः पर्वतीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। प्राचीन काल में भूगोल के पूर्वीय प्रदेशो में ही हीरे आदि रत्न पदार्थ निकाले जाते थे और वहीं से पश्चिमी देश और राष्ट्र इन्हें प्राप्त किया करते थे, इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पश्चिमी राष्ट्र अच्छी किस्म के रत्नों को सदा 'प्राच्य' (Orient) कहा करते थे।

आजकल हीरों की प्राप्ति का मुख्य केन्द्र अफ्रीका है। मूल्यों की दृष्टि से ९० या ९५ प्रतिशत रत्नों का भाग अफ्रीका महाद्वीप से प्राप्त होता है। अफ्रीका महाद्वीप के निम्नलिखित स्थान रत्नों के अच्छे उत्पादक देश हैं—बेल्जियम कांगो, घाना, दक्षिण अफ्रीका संघ, सियेरा लियोन। अफ्रीका महाद्वीप के अतिरिक्त ब्राज़ील (दक्षिणी अमरीका), स्याम, वर्मा, श्री लंका, भारत, संयुक्तराष्ट्र

अमरीका, आस्ट्रेलिया, रूस आदि हैं।

इस पुस्तक में प्रत्येक रत्न के साथ संसार में उसकी उपलब्धि के स्थानों का उल्लेख कर दिया गया है।

रत्नों के आकार—अधिकतर रत्न रवे (crystal) के रूप में मिलते हैं। वह प्राकृतिक ठोस पदार्थ रवा कहलाता है कि जिसका एक नियत आकार हो, जिसकी सब सतहें समतल और चिकनी हों, और जिसकी बनावट भी एक नियत रूप की हो। रवे का बाहरी आकार, भीतरी आकार का ही एक दीखने वाला रूप होता है—प्राकृतिक तथा कृत्रिम खनिज में एक बड़ा भारी अन्तर यह होता है कि कृत्रिम खनिज की भीतरी बनावट किसी नियत प्रकार की नहीं होती, यह अपने छोटे रूप से बड़े रूप में नहीं आता; इसके भीतरी अंश अव्यवस्थित रहते हैं, मानो कि एक का दूसरे से कोई वास्ता ही न हो। प्राकृतिक रवा, उसी किस्म के और उसी आकृति के छोटे-छोटे रवों की उसी आकृति में एक समष्टि होता है। रवे की यह प्राकृतिक आकृति बहुत महत्वपूर्ण है, कारण कि रवे की बहुत सी भौतिक विनेषताएँ इस के अनुसार होती हैं। रवे के रूप में पाये जाने वाले पत्थर, भले ही वे संसार के किसी भी कोने में क्यो न पाये जायें, सदा उसी आकृति में पाये जाते हैं। पन्ना भले ही वह दक्षिणी अमरीका में मिला हो अथवा मिश्र में, षट्कोणीय क्रिस्टल के रूप में मिलता है।

आकृति की दृष्टि से क्रिस्टल छः प्रकार माने जाते हैं—

(१) घनीय अर्थात् जिनकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई तीनों ही आयाम एक समान हों। इस आकृति में मिलने वाले रत्न, हीरा कंटकिज (स्पाइनल) तथा तामड़ा (गार्नेट) समूह के रत्न हैं। इस आकृति का नाम 'त्रिसमलंबाक्ष' भी है।

(२) चतुष्कोणीय 'अथवा द्विसमलंबाक्ष क्रिस्टल। ये क्रिस्टल आमतौर पर प्रिज्म या त्रिभुज आकार के होते हैं। इसमें गोमेद

का स्थान मुख्य है ।

(३) षट्कोणीय अथवा षड्भुजीय क्रिस्टल । इस समूह में बैरुंज, कुरुन्दम, स्फटिक तथा टूर्मलीन (शोभामणि) समूह के क्रिस्टल हैं । हरित नीलमणि (एक्वामैरीन) बैरुंज समूह का रत्न है और लाल तथा नीलम भी बैरुंज समूह के रत्न हैं—इन सब की आकृति षट्कोणीय ही है ।

(४) विषमलंबाक्ष (Rhombic) क्रिस्टल । इस समूह में पैरिडौट और क्राइसोबैरिल समूह के रत्न आते हैं ।

(५) एकनताक्ष (monoclinic) क्रिस्टल । इस समूह में चन्द्रकान्तमणि तथा स्पोड्यूमीन वर्ग के रत्न आते हैं ।

(६) त्रिनताक्ष (Triclinic) क्रिस्टल । इस समूह में अमेज़-नाइट तथा सूर्यकान्त मणि वर्ग के रत्नों की गणना है ।

क्रिस्टल समूहों की जानकारी रत्न-परीक्षा की दृष्टि से महत्व-पूर्ण है; क्योंकि रत्न-परीक्षा में रत्नों की जिन विशेषताओं को जांच का आधार बनाया जाता है, वे उस पदार्थ के रवा बनने के ढंग पर निर्भर करती हैं । रत्न पदार्थ जब अभी अनकटा और बिन-घड़ा होता है, तब भी क्रिस्टल रूप को देखकर उसकी जानकारी की जा सकती है ।

रत्नों के भौतिक गुण—(क) 'कठोरता'—यह तो सभी जानते हैं कि रत्न रूप में प्रायः वही खनिज रवे काम में आते हैं जो कठोर होते हैं ; कारण स्पष्ट है कि वे पहनने से कम घिसते हैं । **कठोरता** का अभिप्राय वह गुण है जो अपने कणों को अलग-अलग करते समय रुकावट पैदा करता है । इस गुण की माप एक से दूसरे रत्न के मुकाबले में ही का जा सकती है अर्थात् यह देखा जा सकता है कि कौन सा रत्न किस से अधिक कठोर है । इस प्रकार प्रत्येक रत्न को कठोरता के एक क्रम से रखा जा सकता है । वैज्ञानिकों ने इसको बताने के लिये 'मोह क्रम' नाम से एक क्रम

निश्चित किया हुआ है। यह इस प्रकार है—

१. टैल्क (Talc)	४. फ्लोर स्पार	७. स्फटिक
२. जिप्सम	५. ऐपेटाइट	८. पुखराज
३. कैल्साइट	६. फैल्स्पार	९. कुरुंदम (लाल व नीलम)
१०. हीरा		

कठोरता की यह कोई नाप नहीं है केवल मात्र, क्रम ही है—टैल्क का क्रम १ है और हीरे का १० है; परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हीरा टैल्क से दस गुना कठोर है। हीरा वस्तुतः तो टैल्क से कई लाख गुना कठोर होता है। अंगुली के नाखून की कठोरता २।।, ताम्बे के सिक्के की ३, चाकू की ५।।, फौलाद की रेती की ६, ७ है।

जिस खनिज की कठोरता मालूम करनी हो, उस पर ज्ञात माप क्रम के खनिज से खरौंच डाल कर देखना चाहिये; यदि वह खरौंच डाल दे तो जांच किया जाने वाला खनिज उससे कम कठोर होगा।

यह भी सम्भव है कि भिन्न-भिन्न स्थानों के खनिज कुछ कम या अधिक कठोर हों। जैसे कि हीरा। और यह भी सम्भव है कि एक ही रत्न खंड की एक सतह उसकी दूसरी सतह की अपेक्षा कुछ कम या अधिक कठोर हो।

कठोरता जहां रत्न को टिकाऊ बनाती है, वहां उस को रगड़ कर चमकाने में भी सहायक रहती है। जो खनिज जितना अधिक कठोर होगा, उस पर पालिशभी उतनी अधिक की जा सकेगी।

आपेक्षिक घनत्व (गुरुत्व या दड़क)—जिस प्रकार एक रत्न दूसरे की अपेक्षा अधिक या कम कठोर होता है, ऐसे ही कोई रत्न अधिक भारी लगता है तो दूसरा उसके मुकाबले में कम भारी लगता है। यह मुकाबला एक बराबर समाई के भिन्न-भिन्न रत्न-

खण्डों को लेकर तथा उन्हें तोलकर किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने सब पदार्थों का मुकाबला पानी से किया है और एक बराबर समाई (आयतन) के पानी से जो रत्न जितने गुना भारी होता है वह अंक उस के आपेक्षिक घनत्व की माप माना गया है। कुछ विशेष रत्नों तथा रत्न सम्बन्धी पदार्थों के आपेक्षिक गुरुत्व के अंक इस प्रकार हैं—

नाम रत्न	आ. घ.	नाम रत्न	आ. घ.
रत्नोपल	२.१५	हीरा	३.५२
चन्द्र कान्त	२.५७	पुखराज	३.५३
स्फटिक	२.६६	स्पाइनेल	३.६०
बैरुंज	२.७४	तामड़ा (हेसोनाइट)	३.६१
फीरोजा	२.८२	कुरुन्दम	४.०३
शोभामणि	३.१०	तामड़ा	४ ०७
पेरिडोट	३.४०	गोमेद	४.२०

एक अद्‌भुत बात यह है कि प्राचीन शास्त्रों में उस हीरे को कि जो पानी में तैर सके (वारितरम्) श्रेष्ठ माना है। पानी से ३.५२ गुना हीरा पानी में तैर नहीं सकता— प्रतीत होता है अधिकतर प्रसिद्ध महारत्नों में सबसे कम आपेक्षिक घनत्व (ऊपर दी हुई सूची देखिये) होने के कारण यह अतिशयोक्ति की गयी हो; हीरा दूसरे प्रसिद्ध रत्नों से तो, हाथ में लेने पर हलका लगना ही चाहिये ; पर यह भी कह दिया कि इतना हलका लगे कि मानो पानी में तैरेगा।

रत्नों की परीक्षा के लिये उनके आपेक्षित घनत्व की जानकारी एक बहुत महत्त्वपूर्ण परीक्षा है। इसका कारण यह है कि प्रमुख रत्नों का अपेक्षिक गुरुत्व प्रायः भिन्न-भिन्न और प्रायः एक निश्चित अंक ही होता है।

रत्नों के **आपेक्षिक घनत्व को आँकने** के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की तुलाओं से काम लिया जाता है। परन्तु एक विधि वह भी है कि जिससे शीघ्रता से ही इसकी माप की जा सकती है। इस विधि में ज्ञात घनत्ववाला कोई भारी द्रव पदार्थ लेकर उनमें उस रत्न-खंड को डाल दिया जाता है कि जिसका आपेक्षिक घनत्व जानना होता है। लिये हुए भारी द्रव पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात होता है; अब यदि उसमें डालने पर अज्ञात आपेक्षिक घनत्व का रत्न तैरता रहता है तब तो अज्ञात रत्न का आपेक्षिक गुरुत्व उस से कम होगा; यदि इसका ५/६ भाग द्रव की सतह से नीचे होगा तो रत्न का अपेक्षिक घनत्व द्रव के आपेक्षिक घनत्व का भाग ५/६ होगा।

यदि रत्न द्रव में जल्दी-जल्दी ऐसे डूब जाता है जैसे कि पानी में शिला डूबती है तब उसका आ. घ. द्रव से पर्याप्त अधिक होगा। और यदि रत्न धीरे-धीरे डूबता है तो उसका आ. घ. द्रव से थोड़ा ही अधिक होगा।

'मिथाइलीन आयोडाइड' या 'ब्रोमोफोर्म' नाम के द्रव का इसके लिये प्रयोग किया जाता है। मिथाइलीन आयोडाइड का आ. घ. ३.२२ है; और ब्रोमोफार्म का २.८९ है। इनको क्रमशः ३.१ और २.६७ घनत्व तक हलका भी किया जा सकता है। ३.१ आ. घ. के मिथाइलीन आयोडाइड में टूर्मैलीन न डूबेगा, न तैरेगा—इसका भी आ. घ. ३.१ है। २.६७ आ. घ. के ब्रोमोफार्म में बैरिल धीरे-धीरे डूबता है और बिल्लोर सिर्फ तैरता ही है। पुखराज और टूर्मैलीन में पहचान करने के लिये विशुद्ध मिथाइलीन आयोडाइड का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें पुखराज (आ. गु. ३.५३) डूब जाता है और टूर्मैलीन (आ. गु. ३.०६) तैरता है।

परन्तु सावधान—इन तथा दूसरे द्रवों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखिये द्रव हाथों अथवा कपड़ों पर न पड़े और एक से दूसरे द्रव में डालने से पूर्व रत्न और चिमटी को खूब साफ भी कर लेना चाहिये ।

चिराव (cleavage)—हीरा सबसे अधिक कठोर खनिज रत्न है । वैदिक तथा लौकिक साहित्य में तो इसका 'वज्र' नाम इसकी कठोरता का प्रतीक है । इसकी कठोरता का कारण यह बताया गया है कि इसके तत्त्व कार्बन के परमाणु आपस में बहुत ही अधिक सटे रहते हैं ।

परन्तु फिर भी यह आसानी से चिर जाता है । इसके परमाणु तो आपस में खूब सटे रहते हैं परन्तु परमाणुओं से बनी सतहें आपस में शिथिलता से जुड़ी हुई होती हैं । हीरे आदि रत्न अपनी सतहों के समान्तर दिशाओं में ऐसी ही सरलता से चिर जाती हैं जैसे कि लकड़ी अपने रेशे के समान्तर दिशा में असानी से चिरती है । हीरा अपने अष्ट पहलू पहल के समान्तर चिरता है ।

परन्तु चिराव की यह सम्भावना बहुत थोड़े रत्नों में रहती है । चिरावस्थल की सूचक **चटक**, जिस रत्न में हो तो उससे उस रत्न की पहचान करने में सरलता होती है । सरलता से चिरने वाले रत्न ये हैं—प्रसिद्ध रत्नों में से हीरा और पुखराज सरलता से चिरते हैं । बैरूंज, बिड़ालाक्ष और तामड़ा आसानी से नहीं चिरते । चिराव की चटक रत्न को काटने वाले के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण रहती है ।

भंग—चिराव की तुलना में किसी रत्न का **भंग** तब कहलाता है जब कि वह इस प्रकार टूटे जैसे कि लकड़ी के रेशों को तोड़कर उनको आरपार काटा जाता है । रत्नों का भंग कई आकारों में

होता है। निम्नलिखित बातें ध्यान में रखिये—(१) अधिक रत्नों का भंग टेढा मेढा और सीपी के आकार का होता है—ठीक ऐसा ही जैसा कि कांच का भंग होता है।

(२) जहां से रत्न टूटता है, वहां भी तल चमकदार चिकना ही हो सकता है परन्तु चिराव में जिस प्रकार चिराव एक अकेले तलवाला और नियमित होता है—भंग वैसा नहीं होता; भंग में अनेक ऊँचे-नीचे तल बन जाते हैं।

भंग के प्रकार को देखकर प्रायः भिन्न-भिन्न रत्नों में पहचान नहीं की जा सकती।

रत्न कहलाने के आधार

: ३ :

रत्नों की प्रकाशीय विशेताएँ—अनेक प्रकार की सतही चमकें; पारदर्शिता; रंग; रंगों के छींटे; प्रकाश का वर्तन तथा वर्तनाङ्क; दुहरा-तिहरा वर्तन; वर्णवैचित्र्य; अपकिरणन; रंग-दीप्तिः तारकता; बिल्ली की आँख जैसे रत्न; अंधेरे में चमकना।

रत्नों के सौन्दर्य का आधार—रत्नों के उपयोग, उनके महत्त्व, प्रभाव-शक्तियों तथा भौतिक रूप तथा गुणों के विषय में सामान्य विचार करने के बाद अब इस बात की ओर पाठक का ध्यान खींचना आवश्यक समझते हैं कि हम सही रत्न का सही उपयोग तभी कर सकेंगे कि जब कि रत्नों की आम व खास विशेषताओं को जान लेंगे। खास-खास रत्न की खास-खास विशेषताओं

का वर्णन तो हम इस पुस्तक के तीसरे भाग में करेंगे। यहां पहले हम यह बतलाने की कोशिश करेंगे कि हम किसी पदार्थविशेष को रत्न क्यों कहते हैं ? रत्न पदार्थों में कुछ ऐसी सब में पायी जाने वाली विशेषताएँ होती हैं कि हम बिना किसी खास कोशिश के ही उसको देखते ही 'रत्न' कह उठते हैं। हीरा, माणिक्य, नीलम, पन्ना, पुखराज, वैदूर्य आदि कहने को तो हैं सभी पत्थर ही, परन्तु इनकी कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं जिनके कारण इनका विशेष नाम 'रत्न' अथवा रमणीय पड़ा और अंग्रेजी में इन पत्थरों को बहुमूल्य (Precious) पत्थर कहने लगे। **एक शब्द में कहें तो इन सबकी साझली विशेषता का नाम है, सौन्दर्य अथवा लावण्य।** और फिर अकेला सौन्दर्य अथवा लावण्य ही पदार्थ को रोचक या रत्न नहीं बना देता। 'रत्न' कहलाने के लिये, लावण्य का अधिक से अधिक स्थिर बने रहना, टिके रहना भी आवश्यक है। इन दोनों के मेल से रत्न में दिव्यपना भी आता है और रत्न के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। फिर 'रत्न' पदार्थों में गिनती किये जाने वाले पत्थरों में दो विशेषताएँ और भी गिनी जाती हैं— एक है उनका 'कम पाया जाना'। जो पदार्थ सरलता से आम तौर पर मिल जाते हैं। उनका भला मूल्य और आदर अधिक क्यों होने लगा ! फिर एक चौथी विशेषता है 'चलन अथवा फैशन'। १९२० से १९२९ तक युरोप में एम्बर अथवा तृणमणि की खूब मांग रही और अब तारे की भांति छः या बारह किरण छोड़ने वाले नीलम की मांग बहुत है। अधिक महत्त्वपूर्ण रत्नों की मांग समय के साथ की बदलती रहती है। अभिप्राय यह हुआ कि खनिज अथवा दूसरा वह पदार्थ जो अपने सौन्दर्य के कारण व्यक्ति का **आभूषण बन सके**, जिसका यह सौन्दर्य **पर्याप्त टिकाऊ** हो; जो आमतौर पर मनुष्य को **सुलभ न हो**—बहुत कम मिलता हो और जो देश में **चलता** हो

वह पदार्थ 'रत्न' कहलाता है। प्रत्येक रत्नपदार्थ में इन चारों विशेषताओं का होना आवश्यक है, परन्तु लावण्य अथवा सौन्दर्य का होना तो रत्न की मानों जान ही है। अपने सौन्दर्य के कारण मोती-सरीखे कुछ कम टिकाऊ, सुलभ और कभी-कभी चलन में न रहने वाले पदार्थ भी 'रत्न' ही कहलाते हैं।

सौन्दर्य क्या है? रत्न के आंगन में प्रकाश की किरणों का कौतुक ही तो!—इन रत्नों का सौन्दर्य यों तो अनेक बातों पर निर्भर है, परन्तु उन सबको संक्षेप से कहें तो कह सकते हैं कि यह सौन्दर्य केवल मात्र प्रकाश की किरणों का एक कौतुक मात्र है। प्रकाश की किरणें रत्नों पर पड़ती हैं और फिर कुछ तो उनसे टकरा कर देखने वाले की आंख पर लौट आती हैं; कुछ रत्न में घुस कर पार हो जाती हैं; कुछ घुस कर भी फिर वापस लौट आती हैं; प्रकाश की एक किरण सात रंगों की किरणों से मिलकर बनी होती है—किसी रत्न के भीतर जा कर लौटती हुई प्रकाश की किरण सात रंगो में बँट जाती है—और फिर रत्न में से इन्द्रधनुष की-सी छवि निकलती दिखायी देती है—बस प्रकाश की किरणों का यह अद्भुत खेल ही है जो हमारा मनोरंजन करता है; हमारा मन इसके कारण ही ऐसे पदार्थ के सौन्दर्य से मुग्ध हो जाता है और उसका उपासक बन जाता है। रत्नों की ये **प्रकाशीय विशेषताएँ** कहलाती हैं। यहां हम पहले पहल इन विशेषताओं पर ही प्रकाश डालेंगे। रत्नों की महत्वपूर्ण प्रकाशीय विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं:-

१—**द्युति या चमक** (Lustre)—किसी भी वस्तु को देखते ही देखने वाले की दृष्टि में सबसे पहले उसका बाहरी रूपरंग आता है। रत्नों की सतह पर एक विशेष प्रकार की चमक अथवा द्युति होती है। रत्न अपने तल पर किस प्रकार के तथा कितने

प्रकाश को लौटाता है, रत्न की चमक मुख्यतया इन दो बातों पर निर्भर होती है। यह चमक कई प्रकार की हैं :--(क) **ग्रीज**-द्युति और **तेलिया** चमक; (ख) **धात्विक चमक** अर्थात् प्रतिदिन बरतने में आने वाली धातुओं-पीतल, कांसी, सोना, चांदी आदि जैसी चमक; (ग) **मुक्ता-द्युति**—मोती की अपनी निराली चमक होती है; इस लिये जौहरियों ने इसका नाम मोती के नाम पर मुक्ता-चमक रखा है। इसी चमक का दूसरा नाम 'प्राच्य' (Orient) चमक भी है; (घ) **राल-द्युति**—राल सरीखी चमक का नाम राल-द्युति है और फिर है (ङ) **रेशमी चमक**—रेशम की अपनी अलग चमक होती है। इनके अतिरिक्त **हीरक द्युति**, **काचर द्युति** और **मन्द द्युति** शब्दों पर भी ध्यान दीजिये। रत्नों में से हीरा ऐसा पदार्थ है, जो अपने भीतर गये हुए लगभग सारे प्रकाश को लौटा देता है—इसके कारण हीरा अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देता है; इसलिये इसकी अपनी एक विशेष चमक होती है; उसका नाम हीरक द्युति रखा गया है। कांच अथवा स्फटिक जैसी दमक **काचर द्युति** कहलाती है।

रत्नों को और अधिक बारीकी से पहचानने के लिये इन में से प्रत्येक चमक की चार-चार कोटियां अथवा दर्जे हैं—जो कम या अधिक चमक के हिसाब से हैं :—

(१) प्रथम अथवा सर्वोच्च कोटि की चमक वह है कि जो श्वेत प्रकाश को छोड़ती है :—इस प्रकार की चमक दूर से खूब प्रज्वलित तथा झलकती दिखायी देती है और इसकी सतह पर चमकती शक़लें अथवा परछाइयाँ दिखायी देती हैं। ऐसी प्रथम कोटि की चमक हीरे की होती है। 'आयुर्वेद प्रकाश' में हीरे को 'अतिभासुर' अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी बताया है।

(२) दूसरे दर्जे की चमक को अंग्रेजी में 'शाइनिंग' कहते हैं;

यह चमक प्रथम कोटि की चमक अर्थात् 'अतिभासुरता' से कुछ कम होती है। इसकी सतह पर परछाइयाँ धुँधली-धुँधली दिखायी देती हैं।

(३) तीसरी कोटि की चमक को अंग्रेजी में 'ग्लिसनिंग' कहा है—ऐसे रत्न की सतह से लौट कर आया प्रकाश इतना मध्यम होता है कि एक हाथ की दूरी पर भी स्पष्ट नहीं दिखायी देता। और इसकी सतह पर किसी प्रकार की परछाईं नहीं दिखायी देती।

(४) बहुत सूक्ष्म सी चमक चौथी कोटि की चमक है। अंग्रेजी में इसको 'ग्लिमरिंग' नाम दिया गया है। ऐसी चमक वाली वस्तु को दिन के समय आँख के समीप लाकर देखने से कुछ थोड़े से चमकते बिन्दु ही दिखायी देते हैं।

हमने रत्नों की इन तरह-तरह की सतही चमकों की चर्चा इतने विस्तार से इस प्रयोजन से की है कि खनिजों, विशेषतया रत्नों, को पहचान करने का पहला और ऐसा साधन जो सबको सुलभ हो, आदमी की अपनी दृष्टि ही है। निरन्तर अभ्यास से जोहरी अलग-अलग रत्नों के बारीक अन्तरों को पहचानने के अभ्यासी हो जाते हैं।

वस तो चतुर जौहरी अपनी पैनी दृष्टि से पहले पहल रत्न की दमक को देखता है और उसको देखकर न केवल 'रत्न' की जाति, उसके नाम-धाम का ही अनुमान कर लेता है, अपितु उसके मूल्य को भी कुछ सीमा तक आंक लेता है।

पारदर्शिता—यह वह गुण है कि जिसके कारण प्रकाश पदार्थ में से आर-पार हो सकता है। किसी पदार्थ में से प्रकाश की किरणें जितनी मात्रा में तथा जितनी सरलता से आर-पार आ सकेंगी, वह

पदार्थ उतना ही अधिक पारदर्शक होता है। कुछ पदार्थ **पारभासी** होते हैं—इनमें प्रकाश कुछ कम मात्रा में तथा कठिनता से आर-पार होता है। जेड पारभासक रत्न है। **अपारदर्शक** पदार्थ में से प्रकाश बिल्कुल नहीं गुजरता। धात्विक चमक वाले रत्न अपारदर्शक होते हैं। रत्नों में से अधिकांश पारदर्शक हैं। विशेषतया बहुमूल्य रत्न। हमारे प्राचीन ग्रन्थो में महारत्नों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी **स्वच्छता** बतायी है। रत्न की स्वच्छता उस की पारदर्शकता ही है। पारदर्शक रत्न को आंख के सामने रखिये ; यह भले ही रंगीन नीलम, माणिक्य, पन्ना या पुखराज ही क्यों न हो, ऐसा प्रतीत होगा कि मानो इसमें कोई दूसरा पदार्थ है ही नहीं।

रंग—रत्नों को सुन्दर बनाने में रंग का अपना निराला महत्त्व है। कई रत्नों का आकर्षण तो सर्वथा उनके रंगों पर ही निर्भर रहता है। फीरोजा का सारा आकर्षण उसका रंग ही है।

मोटे तौर पर तो रंग उन सात तरह की किरणों का नाम है जिनसे मिलकर सूर्य की श्वेत किरण बनती है। पाठकों ने वर्षाऋतु में इन्द्र धनुष बनता देखा होगा। इसमें सात वर्ण होते हैं—लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंगनी। असल में सूर्य की श्वेत किरण इन्हीं सात वर्णों से मिलकर बनी हुई है। फिर प्रत्येक रंग के तीन भाग माने गये हैं—रंग का मुख्य भाग तो ये सात वर्ण हैं ; ये अलग-अलग अथवा एक दूसरे से मिलकर नाना प्रकार के वर्ण बन जाते हैं। रंग का दूसरा घटक है आराग अथवा झाईं या कम-अधिक चमक; हर एक वर्ण की चमक भी कम या अधिक हो सकती है। चमक की गहराई, मध्यमपना और हलकापन रत्न के आकार और मोटाई के अनुसार बदलता रहता है। एक ही प्रकार रत्न-खण्डों के वर्णों की चमक उनकी मोटाई के अनु-सार होगी—जो रत्नखण्ड पतला होगा उसके वर्ण की झाईं पतली या

कम गहरी होगी ।

परन्तु रंग का मुख्यभाग उसका वर्ण है और वर्ण आता है सूर्य से। सूर्य की किरण में, जैसा कि ऊपर बता आये हैं, छः वर्ण हैं। श्वेत प्रकाश की किरण जब किसी पारदर्शक वस्तु से टकराती है, तब उसका कुछ अंश तो उसकी सतह से ही लौट जाता है, परन्तु उसका अधिकांश पारदर्शक पदार्थ में से गुजरता है। पारदर्शक पदार्थ किरण के कुछ अंश को सोख लेता है, शेष उससे बाहर निकल जाता है इस प्रकार सातवर्णों की बनी हुई किरणमाला में से जो एक या अधिक वर्णों की मिली जुली किरण बाहर आती है वही वर्ण उस पदार्थ का हमें दिखायी देता है। भिन्न-भिन्न रत्न किन्हीं विशेष वर्णों की किरणों को सोखते हैं—मानो उन खास-खास वर्णोंकी किरणों को चुन लेने की उनकी आदत ही हो। यह भी एक अद्भुत संयोग ही समझिये कि किसी-किसी रत्नपाषाण के भीतर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न वर्णों की किरणों का विलय होता है और इस कारण एक ही रत्न को भिन्न-भिन्न दिशाओं से देखने पर उसके भिन्न-भिन्न रंग दिखायी देते हैं। टूर्मलीन (शोभामणि) के एक ही मणिभ को दो भिन्न-भिन्न दिशाओं से देखिये, वह प्रायः लाल और हरा' दो रंग का दिखायी देगा। शोभामणि में यह गुण बहुत ही तीव्र मात्रा में पाया जाता है और इस के कारण वह अत्यन्त आकर्षक लगता है।

छींटें भी दिखायी देते हैं—कई रत्नों में वर्णों की किरणों का विलय एक समान नहीं होता, या यों कहिये कि रत्न में वर्ण को विलय करने वाला तत्त्व अथवा वर्णक पदार्थ समान रूप से नहीं मिला होता; इसका परिणाम यह होता है कि उसमें रंग के छींटे या धब्बे दिखायी देते हैं। ऐमीथीस्ट अथवा नीलम में प्रायः ऐसा देखने में आता है।

प्रकाश का वर्तन (मुड़कर चलना)—प्रकाश की किरण की एक

विशेषता यह भी है कि वह जब किसी घने पदार्थ में से पतले अथवा विरल पदार्थ में और विरल पदार्थ में से घने पदार्थ में प्रवेश करती है तो उस का रास्ता सीधा नहीं रहता और चाल बदल जाती है। किसी रत्न के भीतर से निकलने वाली किरण अपने रास्ते से मुड़ कर हमारी आंख में आती है। यह उसका '**वर्तन**' कहलाता है। हर एक पदार्थ में वर्तन की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है--इसकी माप हवा में उसके वर्तन के अनुपात में की जाती है और यह उस रत्न का **वर्तनाँक** कहलाता है। चूँकि प्रत्येक रत्न का वर्तनांक अलग-अलग है, इसलिये, रत्न के वर्तनांक को जानकर हम रत्न की निश्चित पहचान कर सकते हैं। किसी रत्न का वर्तनांक कैसे निकाला जाता है--इसकी व्याख्या तो हम यस प्रारंभिक पुस्तक में नहीं कर सकेंगे रन्तु यह निश्चित है कि रत्न का वर्तनांक उसकी पहचान का एक प्रमुख साधन है।

अद्भुत देन—दुहरा—तिहरा वर्तन--रत्न में से गुजरती किरण का वर्तन जहां उसकी पहचान में मदद करता है--वहां यह एक दूसरे प्रकार से भी प्रकृति की अनूठी देन है। प्रथम तो यह वर्तन जब एक चरम सीमा तक पहुँच जाता है तो किरण मुड़ती-मुड़ती जिस ओर से आयी थी, उसी ओर लौटने लगती है। हीरे का वर्तनांक सबसे ऊँचा होता है; इसलिये इसमें किरण मुड़ते-मुड़ते शीघ्र ही इतनी मुड़ जाती है कि वापस लौट पड़ती है—एक प्रकार से हीरे की सतह पर पड़ा लगभग सारा ही प्रकाश उसके भीतर घुस कर भी फिर वापस लौट पड़ता है और यह **अनुपम छटा छा देता है**। कम वर्तनांक वाले रत्नों में प्रविष्ट प्रकाश का अधिकांश उसमें से पार हो जाता है। हीरे आदि को काटकर भी रत्नों को ऐसा बना दिया जाता है कि उनमें से प्रकाश का पूर्ण परावर्तन (लौटना) होता रहता है और इस प्रकार उनकी दमक खूब बढ़ जाती है।

रवे या क्रिस्टलों की बनावट छः प्रकार की है—इनमें से

हीरा घनाकृति है। घन समूह के तथा रवा-रहित रत्नों या खनिजों में से जब किरण गुजरती है तो वह एक ही रश्मि बनी हुई आगे बढ़ती है--परन्तु शेष पांच प्रकार के रवों में से गुजरने वाली तिरछी रश्मि न केवल वर्तित ही होती (मुड़ती) है अपितु दो या तीन रश्मियों में भी बंट जाती है। एक की दो बनी हुई रश्मियां कम-अधिक, असमान, चाल से आगे बढ़ती हैं। 'कैल्साइट' में यह '**दुहरा-वर्तन**' इतना साफ होता है कि खाली आंख से भी दिखायी देता है। आपने देखा होगा कि किसी-किसी कांच के टुकड़े को पुस्तक के छपे हुए पृष्ठ पर रख कर देखने से **अक्षर दुहरे** दिखायी देते हैं। हीरे तथा रवा रहित विक्रान्त (गार्नेट) तथा दूधिया पत्थर में–जिनमें इकहरा वर्तन होता है, दुहरे अक्षर नहीं दिखायी देते।

एक और कौतुक भी--इसी वर्तन गुण के कारण दिखायी देता है। दुहरे वर्तन में एक किरण की दो किरणें बन जाती हैं। जिन पदार्थों में ये साथ-साथ चलती हैं, उनमें तो उपर्युक्त रीति से दुहरे अक्षर दिखायी देते ही हैं--फिर किसी-किसी रत्न में इन किरणों का रत्न में विलयन भीतर ही खपजाना–असमान मात्राओं में होता है--उनमें ये किरणें दो अलग-अलग रंगों की दिखायी देती हैं। माणिक्य तथा नीलम को एक दिशा से देखने पर कोई रंग दीखता है. उसी को दूसरी ओर से देखने पर उससे भिन्न दीखता है। रत्नों की यह विशेषता **द्विवर्णिता** (दुरंगापन) कहलाता है। इन रत्नों के सौन्दर्य का एक बड़ा कारण ये दुहरे रंग और इनका मिश्रण ही है। पन्ने में भी दो रंग साफ-साफ दिखायी देते हैं। एलैक्जैंड्राइट में तो तीन रंग--हरा, नारंगी और लाल दिखायी देते हैं।

किरज का अपकिरणन (या बिखराव) इन्द्रधनुष पाठकों ने देखा ही होगा; साबुन के बुलबुले और सीपियों को भी खास तरह से चमकता देखा होगा। होता यह है कि प्रकाश की रश्मि कुछ

पदार्थों में से निकलते समय जब मुड़ती है, (वर्तित होती है), तब उससे सात वर्णों की किरणें एक दूसरे से आगे पीछे रह जाती हैं—उनकी चाल एक सी नहीं रहतीं; लाल किरण सबसे कम मुड़ती है और बैंगनी सब से अधिक। परिणाम यह होता है कि बाहर देखने वाले की आंख में सातों रंग एक पट्टी के रूप में दिखायी देते हैं। **यह इन्द्रधनुषी** चमक या **रंगदीप्ति** (ir descence) कहलाती है। ऐसे पदार्थों का तल समतल होते हुए भी उसमें बहुत ही सूक्ष्म ऊँचा-नीचापन विषमताएँ होती हैं और इसप्रकार प्रकाश सात रंगों में बंट जाता है।

हीरे से किरण का अपकिरणन भी बहुत अधिक मात्रा में होता है, कांच की अपेक्षा लगभग तिगुना। इसका परिणाम यह होता है कि हीरे को एक ओर घुमाने से पीला, तो उसी ओर कुछ और अधिक घुमाने पर लाल या आसमानी रंग की चमक दिखायी देती है। भारतीय हीरों में जो 'ज्वाला (fire) सी फूटती दिखायी देती है, उसका भी कारण भी हीरे की यह विशेषता ही है। स्फटिक या कांच में यह-बिरंगी दमक इतनी नहीं दिखायी देगी।

तारकता अथवा तारे की किरणों के समान फूट कर निकलतीं किरणें दिखायी देना—लाल और नीलम को जब काटकर ऐसा बना दिया जाता है कि उस का ऊपर का सिरा उन्नतोदर (बाहर की ओर गोल) हो, पीठ पर चपटा हो और पहल न बनाये गये हों और तब ऊपर से उसमें झांका जाये तो उस में छः तथा बारह किरणें ऐसे फूटती दिखायी देतीं हैं कि मानो वह कोई तारा हो। यह विशेषता उनकी **तारकता** कहलाती है। यह गुण लाल और नीलम में विशेष रूप से पाया जाता है; इसीलिये इनको तारक लाल और तारक नीलम भी कहते हैं। ये पर्याप्त मँहगे होते हैं।

बिडालाक्षि-प्रभाव——शिखर पर उन्नतोदर बनाये कुछ रत्नों में ऊपर से झाँकने पर चमकीली रेखा ऐसी दिखायी देती है जैसी बिल्ली की आंख में। इस विशेषता के कारण वह रत्न बिल्ली की आंख जैसा दिखायी देता है। इस प्रभाव को बिडालाक्षि-प्रभाव (chatoyancy) कहते हैं। लहसनिया अथवा बिडालाक्ष अथवा 'साइमोफेन' अंधेरे में वैसे ही चमकता है जैसे कि बिल्ली की आंखें।

संदीप्ति (luminescence)——कुछ रत्नों को सीधे-सूर्य के प्रकाश में अथवा परा बैंगनी किरणों को पैदा करने वाले पदार्थ के साथ रखा जाता है तो वे चमकने लगते हैं——यह गुण अंधेरे में रखने पर और भी अधिक दिखायी देता है। इस गुण को रत्न की **संदीप्ति** कहा जाता है। यह दो प्रकार की होती है——यदि यह संदीप्ति उत्तेजक पदार्थ के सम्पर्क के रहने तक ही रहे तब तो इसको फ्लोरेसेंस (fluorescence) अथवा '**प्रतिदीप्ति**' कहते हैं। यदि उत्तेजक पदार्थ से सम्बन्ध तोड़ देने पर भी यह संदीप्ति बनी रहे तो उस को **स्फुरदीप्ति** (phosphorescence फॉस्फोरेसेन्स) कहते हैं। हीरा, लाल, रत्नोपल और तृणमणि में संदीप्ति काफी मात्रा में विद्यमान रहती है। हीरे को सूर्य किरणो में रखकर फिर अंधेरे में रखिये——तो वह चमकने लगता है। 'स्फुर दीप्ति' की यह विशेषता भांति-भांति के हीरो में कम-अधिक होती है।

परन्तु रंग बड़ा धोखेबाज है! रंगों के इस कौतुक को देखकर आप समझ गये होंगे कि रत्नों का सौन्दर्य रंगों पर निर्भर होते हुए भी रंग प्रायः आकस्मिक ही होते हैं। अधिकतर रत्नखनिज अपनी विशुद्ध अवस्था में वर्णहीन होते हैं। वर्णहीन काँच को उसमें विविध धात्वीय ऑक्साइड डालकर चमकीले रंग बना लिये जाते हैं। कुछ रत्नों में अपने निजी रंग भी अवश्य होते हैं—उदाहरण के लिये वैदूर्य, हरितमणि अथवा फिरोजा का रंग अपने आवश्यक

कटाई द्वारा रत्न का रंग, चमक तथा दमक सब निखर जाते हैं। घटक तत्त्व ताम्बे के कारण होता है। तामड़ा (Granite) समूह के रत्नों के लाल, भूरे और हरे वर्ण उसके आवश्यक घटक तत्त्व के कारण होते हैं।

फिर अनेक रत्नों के साथ विशेष व्यवहार किये जाने पर उनके रंग बदल भी जाते हैं। स्पष्ट है कि उनके ये रंग उनमें किसी वर्णक की उपस्थिति के कारण नहीं होते। आसमान क्यों नीलम को मात देने वाले सुन्दर नीले रंग का है? किसी कुहरे वाले दिन सूर्य का रंग माणिक्य के रंग-सरीखा गहरा लाल क्यों हो जाता है? निश्चय ही ये रंग आसमान में उपस्थित किसी रंजक या वर्णक पदार्थ की उपस्थिति से नहीं उत्पन्न होते! वैज्ञानिकों का मत है कि आसमान में बहुत ऊँचाई पर विद्यमान धूल और जलवाष्प के सूक्ष्म कणों द्वारा सूर्य के प्रकाश को विविध किरणों के अपकिरणन द्वारा ये रंग दिखायी देने लगते हैं। यही बात रत्नों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। **और भी देखिये,** बिल्लौर को जब तपाया जाता है तो उसका रंग लुप्त हो जाता है और उस पर यदि रेडियम किरणें डाली जांय तो इसका रंग फिर लौट आता है। रंग विहीन बिल्लौर पर भारी दबाव डाल दिया जाय तो वह पीला हो जाता है और रेडियम की किरणों में वह फिर नीला दिखायी देने लगता है।

ब्राजील का पीला पुखराज तपाने पर सुन्दर गुलाबी रंग का हो जाता है। साइबेरिया के भूरे-से पीले पुखराज का रंग सूर्य के प्रकाश में सर्वथा जाता रहता है। नीलमणि को तपाने पर वह पीली हो जाती है और लोग इसको 'पुखराज' के नाम से बेचने लगते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि **रंगों का यह सारा जादू** रत्न के सूक्ष्म कणों के परिमाण में परिवर्तन होकर प्रकाश की किरणों के उनके साथ किये गये कौतुक के कारण ही है।

काटें : कृत्रिम रंग : मनुष्यकृत रत्न

: ४ :

रत्नों के सोए हुए सौन्दर्य को जगाना : विविध काटें और रंग का निखार : असली और नकली की पहचान; नवरत्न और उपरत्न ।

रत्नों का हमारा दिया हुआ यह सामान्य परिचय कुछ अधूरा ही लगेगा यदि साथ में दो अन्य कलाओं का भी उल्लेख न किया जाय । इनमें से एक तो है रत्नों के सोये हुए सौन्दर्य को जगाने की कला, अथवा इनको **काटना** और **रंगना** । दूसरी कला है **नकली रत्नों का निर्माण** । इन दोनों कलाओं का संक्षिप्त परिचय देकर हम इस प्रथम भाग को समाप्त करेंगे और प्रत्येक रत्न का पूर्ण परिचय देने का यत्न करेंगे ।

रत्नों के सौन्दर्य को जगाना अथवा **रत्नों की काट और कृत्रिम रंजन**––आभूषणों में जड़ने के लिये प्रायः सभी रत्नों को विशेष रीति से काटकर ही काम में लाया जाता है, प्रकृति में वे जैसे मिलते हैं, वैसे ही उन्हें नहीं रहने दिया जाता । बात यह है कि कभी तो रत्न छोटे-छोटे कंकर ही होते हैं, या टूटे रवे होते हैं । समय पाकर मौसम के प्रभाव से उनमें खोट या दरारें पड़ जाती हैं; इसलिये उनके सौन्दर्य तथा रंग को चमकाना पड़ता है । असल में तो जौहरी का सारा उद्देश्य ही यह है कि प्रकृति से प्राप्त अनगढ़, अनाकर्षक रत्न को अत्यन्त लावण्यमय रत्न बनाये; इसलिये जौहरी के लिये आवश्यक है कि वह इस कला में अत्यन्त प्रवीण हो ।

इस बात का भी प्रयत्न किया जाता है कि रत्न सुडौल बन जाये--ऐंडा-बैंडा न रहे। जो रत्न क्रिस्टल नहीं होते उनको तो काटना और चमकाना नितान्त आवश्यक होता है। पारदर्शक रत्नों को, चाहे वे रंगीन हों या रंगरहित, इस प्रकार काटा जाता है कि उन पर पड़ने वाला प्रकाश सभी ओरसे उसमें जाकर अधिक से अधिक मात्रामें वापस दर्शक की आँख में लौट आये। ऐसा करने पर ही उसकी प्रकाशीय विशेषताएँ निखरती हैं। रत्नोपल,चन्द्रकान्त, बिडालाक्ष (लहसनिया) आदि अपारदर्शक रत्नों की सतह गोल-उन्नतोदर करके चमका दी जाती है। हम यहां विभिन्न प्रकार की काटों का सामान्य परिचय देकर इस प्रसंग को समाप्त कर देंगे।

(१) **कैबोशौंग** (cabochon) **काट**--यह काट उन रत्नों को फबती है जिनमें या तो लहसनिया की तरह गजब की दमक हो, या रत्नोपल के समान रंगों का कौतुक दिखायी देता हो या तारक लाल और तारक नीलम की-सी तारकितता उनमें विद्यमान हो। और कुछ पत्थरों का सौन्दर्य उनके रंगों पर ही निर्भर है। गहरे रंग के तामड़ा सरीखे रत्न रंग की गहराई के कारण काले दिखायी देते हैं। इन्हें खोखली कैबोशौंग काट से काटा जाये तो रत्न पतला पड़ जाता है और रंग निखर जाता है।

कैबोशौंग काट--का मुख्य रूप शिखर पर से गोल-उन्नतोदर, पीठपर से सपाट और शेष बिना पहल के रहने देना है। ऊपर-नीचे दोनों ओर उन्नतोदर किया जाय तो उसको **दुहरी कैबोशौंग काट** कहेंगे। इसी प्रकार **मसूराकार** कैबोशौंग काट, **उच्च** कैबोशौंग काट (जिसमें शिखर भाग बहुत ऊँचा हो); **सरल** कैबोशौंग काट और **खोखली** कैबोशौंग काट, (जिसमें शिखर उन्नतोदर तथा निचला भाग नतोदर भीतर की ओर खोखला) बनाया गया हो—कैबोशौंग काट के ये सभी प्रकार प्राचीन काल से चले आ रहे हैं।

(२) **ज्वलन्त** (Brillient) **काट**—हीरे को पहले कई प्रकार की काटों में काटा जाता था–परन्तु आजकल इसको **ज्वलन्त काट** में काटा जाता है। इस काट से हीरे में अनोखी चमक-दमक आ जाती है और मूल पत्थर का काफ़ी भार कटे हुए रत्न में बच जाता है।

(३) **जाल** (Trap) **काट** अथवा **सीढी** (Step) **काट**–इसका प्रयोग पन्ना तथा पुखराज रत्नों में किया जाता है। मेखला से ऊपर तथा नीचे के अनीक समान्तर तथा आड़े (क्षैतिज) होते हैं। अधिक फैलाव हो जाने से गहरे रंग हलके हो जाते हैं।

(४) **गुलाबी** (Rose) **काट**–अब केवल छोटे हीरों में ही काम में लायी जाती है।

ये सभी काटें पृथक्-पृथक् रत्नों की ज्ञात विशेषताओं को ध्यान में रखकर नियत की गयी हैं।

रंग में निखार उत्पन्न करना–रत्नों की प्राकृतिक आभा को निखारने के लिए कृत्रिम उपाय किये जाते हैं। इस की दो विधियाँ हैं–ताप द्वारा तथा रासायनिक घोलकों में डुबोकर। इस काम में भी अत्यन्त सतर्क रहने तथा दक्षता की आवश्यकता होती है। कई रत्नों का प्राकृतिक रंग तेज धूप में फीका पड़ जाता है। नीले गोमेद, पीले पुखराज, गुलाबी बिल्लौर आदि ऐसे ही रत्न हैं।

रत्नों का निर्माण—मनुष्य रत्नों का अधिक उपयोग सजाने के लिये करता है और इस प्रयोजन से वह आभूषणो में उन्हें जड़ता है। परन्तु बढ़िया प्राकृतिक रत्न अधिक मूल्य के होते हैं; इसलिये स्वभावतः कृत्रिम रत्न बनाने का मनुष्य का स्वभाव है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों तक में **लोहे से** कृत्रिम रत्न बनाने का उल्लेख है। यह तो स्पष्ट ही लिखा है कि रत्न कृत्रिम बनाये जाते हैं—इस लिये रत्नों की परीक्षा करना सीखना चाहिये। बनाये गये रत्न चार प्रकार के होते हैं–(१) **संश्लिस्ट** (Synthetic) (२) **अनुकृत** (Imitation)

तथा (३) युग्म (doublet) और त्रिक (Triplets) तथा (४) पुनर्निमित (Reconstructed)

संश्लिष्ट रत्न वह है जिसका रासायनिक संघटन, रवे की बनावट और इसीलिये भौतिक तथा प्रकाशीय विशेषतायें वही होती हैं जो उस प्राकृतिक रत्न की होती हैं कि जिसका वह स्थानापन्न बनाया गया है। ऐसे रत्नों को उनके असली रत्नों से पहचानना कठिन होता है। सौभाग्य से व्यापारिक दृष्टि से सफल संश्लिष्ट रत्न बहुत थोड़े हैं। ये हैं—कुरुंदम, स्पाइनेल, पन्ना और रूटाइल अथवा टिटानिया। क्राइसोबेरिल तथा तामड़ा आदि अभी प्रयोग-शाला में ही बनाये जा के हैं।

संश्लिष्ट गोमेद (Zircon), तामड़ा, पुखराज, एमिथिस्ट और एलैक्ज़ैन्ड्राइट वस्तुत: असली के प्रतिनिधि नहीं होते—ये असल में संश्लिष्ट कुरुन्दम अथवा संश्लिष्ट स्पाइनेल ही होते हैं—इसलिये गुणों में ये अपने प्रतिनिधि प्राकृतिक रत्नों से नहीं मिलते। इसी-लिये इनको पहचानने में विशेष कठिनाई नहीं होती। संश्लिष्ट कुरुन्दम और संश्लिष्ट स्पाइनल को पुनर्निर्मित रत्नों के नाम से भी जो बेचा जाता है वह ग़ल्ती ही है। **पुनर्निर्मित** रत्न वे होते हैं कि जो असली रत्न के छोटे-छोटे टुकड़ों को पिघला कर रवों के रूप में लाये जाते हैं। कभी पुनर्निर्मित माणिक्यों का प्रचार था—आजकल इनका प्रचलन बहुत ही कम हैं। आजकल किसी भी रत्न को पुनर्निमित नहीं किया जाता परन्तु फिर भी बाजार में पुनर्निर्मित माणिक्य, नीलम, पन्ना आदि के नाम से रत्न बेचे जाते हैं वे प्रायः संश्लिष्ट कुरुन्दम और संश्लिष्ट स्पाइनेल होते हैं। कांच से निर्मित अनुकृत रत्न भी पुनर्निर्मित रत्नों के नाम से बाजार में बिकते हैं।

अनुकृत रत्न—कांच अथवा प्लास्टिक के बनाये जाते हैं। कांच

श्रौर प्लास्टिक के वने होने से इनके तथा असली रत्नों के सभी भौतिक गुण तथा प्रकाशीय लक्षण भिन्न-भिन्न होते हैं। अतएव इनकी पहचान कर लेना सरल होता है।

संश्लिष्ट तथा असली रत्नों में भेद करना सामान्यतया तो बहुत ही कठिन होता है। फिर भी चतुर जौहरी एक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता तथा अभ्यास से इनमें भेद बता ही देते हैं। इस सम्बन्ध में विशेष विस्तार से तो प्रत्येक रत्न के साथ-साथ लिखा जायेगा--परन्तु सामन्यतया निम्न विलक्षणतायें ध्यान में आ ही जाती हैं--

(१) संश्लिष्ट रत्नों में प्रायः वायु के **बुलबुले** होते हैं जो पूरे गोल होते हैं। प्राकृतिक रत्न में, यदि बुलबुले होंगे भी तो उनकी आकृति सदा बेढंगी होती है और उनकी आकृति प्रायः क्रिस्टल की मूल आकृति के समान ही होती है।

(२) संश्लिष्ट रत्न के भीतर यदि किसी वस्तु के कण अन्तः-प्रविष्ट होंगे तो वे वक्र पंक्ति में लगे हुए होंगे। प्राकृतिक रत्नों के अन्तःप्रविष्ट कण छोटे-बड़े होंगे और कहीं होगे-कहीं नहीं भी होगे।

(३) धारियां होंगी तो प्राकृतिक रत्नों में सीधी रेखाओं के रूप में होगी और संश्लिष्ट रत्नों में वे प्रायः वक्र रेखाओं में होंगी

(४) प्राकृतिक माणिक्यों और नीलमों में प्रकाश के कारण जो 'रेशम' नाम से प्रसिद्ध प्रभाव दिखायी देता है वह उनके संश्लिष्ट रूपों में कभी नहीं दिखायी देता।

(५) संश्लिष्ट रत्नों का वर्ण प्रायः गलत होता है; वास्तविक रत्न के रंग से नहीं मिलता। संश्लिष्टों का रंग आवश्यकता से अधिक एकसार और 'चिकना' होता है। असली माणिक्यों और

नीलमों का रंग रत्न के भिन्न-भिन्न हिस्सों में अलग-अलग तरह का होता है और यदि उनमें रंग की पट्टियां होगी तो वे या तो समांतर होंगी या अनियमित होंगी—कभी वक्र नहीं होंगी।

युग्मैक तथा त्रिकरत्न वास्तविक रत्नों के दो टुकड़े जोड़ कर अथवा शिखर पर सच्चा रत्न और नीचे कांच का अनुकृत रत्न जोड़ कर बनाये जाते हैं।

अकेली आंख से देखकर ऐसे जुड़े हुए रत्न पहचान में आ जाते हैं। फिर भी संदेह रहे तो ऐसे रत्न को पानी अथवा तैल में डाल कर देखें। तिरछी दिशा से देखने पर रत्न के दोनों भागों के रंग अलग-अलग दीख जायेंगे। पानी में उबालने पर अथवा अल्कोहल में डुबोने पर दोनों भाग अलग-अलग भी हो जायेंगे।

नवरत्न या महारत्न तथा उपरत्न—रत्नों की सामान्य विशेषताओं को समझ लेने के पश्चात् अब हम कुछ रत्नों का परिचय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करना चाहते हैं। रत्नों की संख्या अनिश्चित है; अनेक लोगों का विश्वास है कि इनकी संख्या ८४ है ; इनमें निश्चय ही रत्नों के साथ मणियों को भी गिना गया है, परन्तु यह भी सच है कि नये-नये रत्नों का ज्ञान होता जा रहा है—आज के वैज्ञानिक उनकी आन्तरिक संरचना के अनुसार इन नये खनिज रत्नों का नामकरण करते जा रहे हैं। आजकल रत्नों की संख्या १०० से ऊपर पहुँच चुकी है।

नवरत्न—प्राचीन संस्कृतग्रन्थों में नौ महारत्न या नवरत्नों के नाम पहले गिनाकर कुछ उपरत्न भी गिना दिये गये हैं। 'आयुर्वेद प्रकाश' में '**रत्नानि नाम्ना नव**'—रत्नों के नाम नौ हैं, कहकर निम्न-लिखित नौ रत्न गिनाये हैं—१. वज्र अथवा हीरा २. विद्रुम अर्थात् मूंगा ३. मौक्तिक अथवा मोती ४. पन्ना ५. लहसनिया ६. गोमेदक ७. माणिक्य (लाल) ८. हरिनील अथवा नीलम

और ६. पुष्पराज अथवा पुखराज। इसके पश्चात् लिखा है कि लोक में अन्य भी कई रत्न प्रसिद्ध हैं परन्तु उनको परीक्षा करने वाले **'उपरत्न'** कहते हैं। 'विष्णुधर्मोत्तर' के प्रमाण से 'भाव-प्रकाश' में इन्हीं ६ रत्नों को महारत्न कहा है। शुक्रनीति चतुर्थ अध्याय में पन्ने का नाम 'पाचि' कहा है तथा पाचिसमेत इन्हीं नौ रत्नों को महारत्न कहा है।

एक अन्यश्लोक (१६१) में यह बताया है कि सबसे अधिक श्रेष्ठ रत्न हीरा है; पन्ना, मणिक्य और मोती श्रेष्ठ हीरे से दूसरे दर्जे पर हैं; नीलम, पुखराज और वैदूर्य मध्यम दर्जे के हैं और गोमेदक तथा मूंगा सबसे निचले दर्जे के रत्न हैं।

नौ ग्रहों के नौ रत्न—प्राचीन ज्योतिष शास्त्र में स्पष्ट ही यह उल्लेख मिलता है कि नौ ग्रहों के प्रतिनिधि नौ रत्न हैं। ये इस प्रकार हैं—

नाम ग्रह	नाम महारत्न
सूर्य	माणिक्य (लाल)
चन्द्र	मोती
मंगल	मूंगा
बुध	पन्ना
बृहस्पति	पुखराज
शुक्र	हीरा
शनि	नीलम
राहु	गोमेद
केतु	लहसनिया

रत्नधारण—सूर्य आदि नवग्रहों के ये जो नवरत्न बताये हैं। इनके सम्बन्ध में लिखा है कि जब कोई ग्रह जन्मकुण्डली में महादशा

अथवा अन्तर्दशा में अनिष्ट स्थान पर बैठ कर अनिष्ट फल देने वाला हो तो उस ग्रह की शांति तथा अनिष्ट की आशंका को दूर करने के लिये उस ग्रह से सम्बद्ध उत्तम जाति के रत्न को धारण करना चाहिये। रत्न-धारण करते हुए यदि उसका शरीर से संस्पर्श बना रहेगा तो उस रत्न की छाया शरीर में प्रति-बिम्बित होगी अथवा उसकी द्युति शरीर में तरंगायित होकर अनिष्ट का प्रतीकार करेगी।

"रसरत्नसमुच्चय"-कार लिखते हैं—

"सूर्यादिग्रहनिग्रहापहरणं दीर्घायुरारोग्यदं,
सौभाग्योदयभाग्यवश्यविभवोत्साहप्रदं धैर्यकृत्।
दुश्छायाचलधूलिसंगतिभवाऽलक्ष्मीहरं सर्वदा,
रत्नानां परिधारणं निगदितं भूतादिभिर्नाशनम्"

अर्थात् ऊपर कहे हुए रत्नों के धारण करने से सूर्यादि नव ग्रहों की समस्त पीड़ाएँ नष्ट हो जाती हैं; दीर्घायु और आरोग्य की प्राप्ति होती है; सौभाग्य का उदय होकर भाग्य, धारण करने के वाले के अनुकूल होता है; उसके पास उत्साह और धैर्य का अटूट भण्डार भर जाता है, अमंगल छाया और दूषित वातावरण उसको कष्ट नहीं देते; भूत-प्रेत और पिशाच आदि उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल पाते।

इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र में व्यक्ति के जन्म के साथ महारत्नों का सम्बन्ध बताया गया हैं। इस दृष्टि से भी भारतीय पद्धति में नौ ग्रह ही महारत्न माने गये हैं—मेष और वृश्चिक राशि के साथ **मूंगा**; वृष और तुला राशि के साथ **हीरा**; मिथुन और कन्या राशि के साथ **पन्ना**; कर्क और सिंह राश के के साथ **माणिक्य**; धनुराशि के साथ **पुखराज**; मकर राशि के साथ

नीलम; कुम्भ राशि के साथ **गोमेद** श्रौर मीन के साथ पुखराज का सम्बन्ध बताया गया है। श्रतएव पहले इन नवरत्नों का विस्तृत परिचय यहां दिया जायेगा।

उपरत्न—'श्रायुर्वेदप्रकाश' श्रादि ग्रन्थों में निम्नलिखित उपरत्न गिनाये हैं - वैक्रान्त, सूर्यक्रान्त, चन्द्रकान्त, लाजवर्द, लालमणि, पेरोजा (फिरोजा), मोती की सीप, काच पत्थर, नीली-पीली श्रादि, मणियां श्रादि।

श्राजकल के वैज्ञानिक, रत्नों को 'बहुमूल्य' (precious) तथा 'श्रर्धबहुमूल्य (Semi-precious) नाम से दो श्रेणियों में बांटते हैं। परन्तु इस श्रेणीभेद को वे प्राय: श्रवैज्ञानिक ही बताते हैं। तथापि मुख्य श्रौर श्रमुख्य भेद तो किये ही जा सकतें हैं। कुछ उपरत्नों का विवरण भी इस प्रारम्भिक पुस्तक में दिया गया है।

रत्नों का ज्योतिष में प्रयोग

रंगों का आध्यात्मिक रहस्य; सात्विक, राजसिक और तामसिक रंग; रत्नों का स्वास्थ्य पर प्रभाव; लग्न के अनुकूल रत्न चुनिये; स्त्रियों के लिये रत्न चुनाव का विशेष नियम; कुंडलियों के उदाहरण; कुंडली में जिस ग्रह को बलवान् करने से लाभ होता दीखता हो उसी को बलवान् करने के लिये रत्न चुनिये; अनिष्ट ग्रह को और अधिक बलवान् मत बनने दीजिये; नौकरी में उन्नति रुके तो कौन सा रत्न पहने ? जिस कन्या के विवाह में देरी हो उसको कौन सा रत्न पहनाये ? रोगानुसार विविध रत्न; कुंडलियों के उदाहरण ।

रंगों का स्वरूप तथा आध्यात्मिक रहस्य—१. रत्नों का ज्योतिष में उपयोग भली प्रकार समझने के लिये यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम पाठक गण "**प्रकाश**" के निर्माण (**Constitution**) पर विचार कर लें। आज के वैज्ञानिक युग में इस तथ्य से प्रत्येक पढ़ा लिखा व्यक्ति भली प्रकार परिचित है कि जो प्रकाश सूर्य से चलकर पृथ्वी पर हम तक आता है वह सात रंगों (वर्णों) का

मिलकर बना हुआ है ; वह केवल श्वेत रंग का ही नहीं है। सच पूछिये तो श्वेत रंग के नाम की संसार में कोई वस्तु है ही नहीं; सात रंगों के सम्मिश्रण ही को श्वेत रंग कहते हैं।

२. हमारे शास्त्रों में आता है कि सूर्य भगवान् के रथ के सात घोड़े हैं। "सप्त अश्व" से तात्पर्य भी इन सात गतिशील रश्मियों से है, क्योंकि संस्कृत भाषा में **'अश्व'** शब्द का प्रयोग शक्ति तथा गति अर्थों में ही होता है। सूर्य की किरणें जिन सात रंगों से मिलकर बनी हैं उनको बरसात वाले दिनो में आकाश पर इन्द्र धनुष के रूप में सभी लोगों ने देखा हुआ ही है। बरसात के दिनों में पानी की बून्दों में से गुजर कर जब सूर्य का प्रकाश आता है तो सात रंगों में विभक्त होकर इन्द्र धनुष का मनोहारी दृश्य उपस्थित करता है।

(३) अब तो प्रत्येक पाठशाला में क्रियात्मक रूप से सूर्य के प्रकाश को सात रंगों में बड़ी सुविधा से विभक्त करके किसी भी क्षण दिखलाया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिये केवल काँच का त्रिकोणाकार एक खण्ड, जिसे अंग्रेजी भाषा में प्रिज्म (Prism) कहते हैं, प्रयोग में लाया जाता है। सूर्य की किरणें जब इस प्रिज़्म (prism) में से गुजरती हैं तो सात रंगों में स्वतः विभक्त हो जाती हैं। उनको कागज पर डाल कर देखा जा सकता है।

(४) कहने का भाव यह है कि सूर्य की किरणों में सात रंग सम्मिलित हैं। ये सात रंग इन्द्र धनुष में अथवा प्रिज़्म (Prism) में से गुजर कर एक विशेष नियत क्रम में ही सदा रहते हैं। वह क्रम इस प्रकार होता है—बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, संगतरिया तथा लाल। इसी तथ्य को अंगरेजी का 'VIBGYOR' शब्द प्रकट करता है, जिसमें—

V—Violet—बैंगनी
I—Indigo—नीला
B—Blue—आसमानी

G—Green—हरा,
Y—Yellow—पीला,
O—Orange—संगतरिया या नांरगी,
और R—Red—लाल, हैं।

(५) अब प्रश्न यह है कि विविध प्रकार के रंगों के पीछे क्या फिलासफ़ी है ? विविध पदार्थ विविध रंगों के ही क्यों प्रतीत होते हैं ? अथवा दृष्टि-गोचर होते हैं । इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जब आप किसी "पीली" वस्तु, कपड़े आदि, को देखते हैं तो वस्तु-स्थिति यह होती है कि जो कपड़ा आप देख रहे होते हैं उस पर सूर्य की किरणों का प्रकाश पड़ता है। जब किरणें उस वस्त्र में प्रवेश करती हैं तो अपने सात रंगों में विभक्त हो जाती हैं। पीला कपड़ा और तो सभी ६ रंग अपने अन्दर रख लेता है परन्तु पीले रंग की रश्मियों को बाहर फैंक देता है। ये पीले रंग की रश्मियां जब हमारी आँख के अन्दर जाती हैं तो हम को वह कपड़ा पीला दिखायी देने लगता है। इसी प्रकार एक हरे रंग के वृक्ष की भी स्थिति है। हम को वह हरा वृक्ष इस लिये हरा प्रतीत होता है कि वह वृक्ष प्रकाश के ६ रंग तो अपने में समेट लेता है; और केवल हरे रंग को बाहर फैंक देता है। हमारी आंखें इस हरे रंग की रश्मियों को ही, चूँकि देखती हैं, इसलिये हम कहते हैं कि वृक्ष का रंग हरा है। इसी प्रकार एक लाल झंडा लाल रंग का इसलिये दृष्टि गोचर होता है कि वह झंडा और तो सब रंग अपने में रखलेता है केवल लाल रंग को छोड़ देता है जो कि लौटती किरणों द्वारा हमारी आँखों के अन्दर जाकर लाल रंग के रूप में झंड़े को देखा करता है। यही नियम अन्य रंगों में दृष्टि गोचर होने वाली समस्त वस्तुओं पर भी इसी प्रकार लागू समझ लेना चाहिये।

(६) उपर्युक्त विवरण से एक आध्यात्मिक तथ्य का उद्घाटन

भी होता है। वह यह कि रंग "श्वेत" उन वस्तुओं का होता है जो अपने पास कोई रंग नहीं रखतीं; किसी भी रंग में रंगी नहीं जातीं, निलिप्ति रहती हैं। इसी कारण ऐसी वस्तुएँ शुद्ध-पवित्र एवं सात्विक मानी जाती हैं। और इसी कारण शुक्ल रंग को सात्विकता का प्रतीक माना गया है। दूसरी तरफ जब कोई वस्तु प्रकाश की सातों की सातों किरणों को, सातों के सातों रंगों को, अपने अन्दर समेट ले और संसार को कुछ न दे तो वह वस्तु काले रंग वाली होती है। चूँकि ऐसी वस्तु ने स्वार्थ से काम लिया, दान-प्रियता नहीं दिखलायी, इसी लिये लोग काले रंग को पसन्द नहीं करते। हाँ, जिनकी तामसिक तथा भोग की प्रवृत्ति होती है वे लोग काले रंग को अवश्य पसन्द करते हैं।

(७) रंगों का अर्थात् प्रकाश के उन रंगों का, जो वस्तुओं द्वारा प्रतिक्षिप्त (Reflect) होकर हमारी आंखों तक पहुँचते है, प्रकृति के तीन गुणों—सत्, रज्, तम, से घनिष्ठ संबन्ध है। क्योंकि प्रत्येक रंग अपने अन्दर एक विशिष्ट प्रभाव रखता है। सृष्टि की चर्चा करते हुए वेद भगवान् ने कहा है:—"प्रजां एकां लोहितशुल्क-कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।" अर्थात् एक ही प्रकृति जिस के "लोहित" 'शुक्ल' और 'कृष्ण' (लाल-श्वेत और काला) तीन रूप हैं, संसार के विविध पदार्थों का रूप धारण किये हुए है। इसी तथ्य को महामुनि पातंजलि ने अपने योग-सूत्रों में और भी स्पष्ट किया है। आपने लिखा है:--"प्रकाशक्रियास्थितिशीलम्, भूतेन्द्रियात्मकम्, भोगापवर्गार्थम्, दृश्यम्" अर्थात् यह समस्त दृश्य जगत्, चाहे वह भूतात्मक (Inorganic) हो, चाहे इन्द्रियात्मक (Organic) हो; मनुष्यों को उनके शुभ अथवा अशुभ अर्जित कर्मों का फल भुगतवाने तथा उनको मोक्ष दिलाने के लिये रचा गया है। यह दृश्य जगत् "प्रकाश", 'क्रिया' तथा 'स्थिति' शील है।

यहाँ तीन गुणों-सत्व, रज, तम-को क्रमशः "प्रकाश", 'क्रिया', तथा 'स्थिति' का पर्यायवाची रखा है। बात है भी ठीक ! सूत्र में 'प्रकाश' शब्द से अभिप्राय सूर्य की समस्त रश्मियों—सातों के सातों रंगों से निर्मित–'श्वेत' रंग से है जो प्रकाश तो है ही, साथ ही परोपकार, आत्मोत्सर्ग, आदि यज्ञीय भावनाओं का भी प्रतीक है।

'क्रिया' शब्द लोहित लाल रंग का पर्यायवाची बना है। इसी प्रकार 'स्थिति'—एक ही आलस्य की स्थिति में बने रहना (Inertia) आलस्य, अन्धकार, मूर्खता, स्वार्थ आदि, काले पदार्थों का द्योतक है। इसी लिये कपट तथा झूठके बाज़ार को '**काला**' बाजार और धोखे से कमाये धन को '**काला**' धन कहते हैं।

(८) कम्यूनिस्ट लोगों ने अपना झंडा लाल रंग का यूँ ही '**घुणाक्षर**' न्याय से नहीं निश्चित किया हुआ। इस के पीछे लाल रंग की निरी रजोमयी फिलासफी उपस्थित है। लाल रंग उग्र क्रिया, हिंसा आदि का प्रतीक है। जिस प्रकार की किसी व्यक्ति अथवा जाति की समष्टि रूप से प्रकृति होती है उसी प्रकृति के अनुरूप ही वह व्यक्ति अथवा वह देश अपने झंड़े का रंग भी चुन लेता है।

(९) कहने का निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक पदार्थ का रंग अपने अन्दर एक विशेष प्रकार का गुण तथा प्रभाव रखता है।

रत्नों के अधिक प्रभाव का कारण—रत्नों का प्रभाव इस लिये अधिक होता है कि उनमें से निकलने वाला रंग एक घनीभूत (concentrated) अवस्था में होता है। रंग रश्मियों का घनीभूत अवस्था में रत्नों द्वारा प्राप्त होना ही 'रत्नों' के मूल्य का ज्योतिष की दृष्टि में मुख्य कारण है। एक पीले कांच के टुकड़े और एक पीले पुखराज में यही तो अन्तर है कि पीले कांच के टुकड़े से निकली हुई पीली रश्मि यद्यपि कुछ उपयोगी है परन्तु उतनी कदापि नहीं जितनी वह पुखराज से घनीभूत (Concentrated) दशा में होकर प्राप्त होने से हो जाती है।

(१०) **स्वास्थ्य पर प्रभाव**—रत्नों अथवा मणियों का स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव होता है; इस तथ्य को आयुर्वेद शास्त्र (Medical Science) ने भी स्वीकार किया है । उनका कहना है कि स्वास्थ्य की प्रगति के लिये 'मणि' 'मन्त्र' तथा 'औषधि' तीनों लाभकारी हैं । जिन सिद्धान्तों के आधार पर हम मणियों की उपयोगिता सिद्ध करते हैं उन ही सिद्धान्तों के अनुसार 'मन्त्र' की सार्थकता तथा लाभ सिद्ध होता है । जैसे मणियों से निकलने वाला रंग अपने अन्दर एक घनीभूत प्रभाव एक वीचि (wave) होने के नाते रखता है, इसी प्रकार मन्त्र भी तो शब्द-वीचियों (Sound waves) का एक अनाहत एवं विशिष्ट रूप ही तो है। अस्तु मन्त्रों का विवेचन विषयान्तर हो जायेगा अतः हम उस का अधिक उल्लेख यहां नहीं करते ।

(११) **रंग चिकित्सा भी इसी आधार पर है**—रंगों के विविध प्रकार के प्रभाव को देखते हुए आधुनिक युग के कई चिकित्सकों ने रंगदार पानी से चिकित्सा की विधि को अपनाया है । विविध रंगों की कई बोतलों में शुद्ध जल यदि धूप में कई दिन पड़ा रहे तो उस में बोतल के रंग के प्रभाव का समावेश हो जायेगा । मानों वह जल अब वही प्रभाव करता है जोकि रत्न करते हैं । उदाहरण के लिये यदि किसी कुँडली में 'वृहस्पति' को बलवान् करना हो तो उस का एक तरीका यह भी होगा कि जिस व्यक्ति की वह कुँडली है उस को वह पीली बोतल वाला जल एक नियत समय तक पिलाया जाये ।

(१२) **विविध रंगों का अलग-अलग प्रभाव क्यों ?**—बात इस प्रकार भी है कि विविध रंग स्वयं श्वेत प्रकाश का अंग होते हुए विविध रंग इस कारण हैं कि उन की वीचि लम्बाई (wave length) एक दूसरे से भिन्न है । सच पूछो तो ऐसा प्रतीत होता

है कि संसार में विविधता का एक मात्र कारण ही यह है कि वस्तुएँ, जिस शक्ति-प्रकृति (Energy) से निर्मित हैं, उस शक्ति की वीचि लम्बाई (wave-length) अथवा गति भिन्न-भिन्न पदार्थों में भिन्न-भिन्न है—आज के विज्ञान से यह तथ्य सिद्ध है। **शक्ति** (Energy) ही **का यह सारा खेल है।**

(१३) अब प्रश्न यह है कि यह कैसे जाना जाये कि अमुक रंग का अमुक प्रभाव है ? हमारे पूर्वजों ने अपने गहन अध्ययन के आधार पर इस प्रश्न का समाधान किया है। जहां भी विविध गुणों-स्वभावों-दशाओं इत्यादि का प्रश्न उपस्थित हो ज्योतिष शास्त्र 'ग्रहों' की शरण में जाता है। **ज्योतिष का अटल एवम् मौलिक सिद्धान्त है कि संसार का कोई भी पदार्थ क्यों न हों और उस का जीवन के किसी भी विभाग से संबन्ध क्यों न हो, उस पदार्थ का प्रतिनिधित्व कोई न कोई ग्रह अवश्य करता है।**

(१४) जैसे हम जानते हैं कि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य ग्रह आंख, हड्डी, पिता राजा आदि पदार्थों का प्रतिनिधि अथवा कारक है, इसी प्रकार रत्नों में सूर्य, माणिक्य (Ruby) का प्रतिनिधि अथवा कारक है। इसी प्रकार चन्द्रमा, मंगल आदि समस्त ग्रह किसी न किसी रत्न के कारक होकर उस का प्रतिनिधित्व करते हैं। कौन सा ग्रह किस रत्न आदि का प्रतिनिधि है, इसको निम्नलिखित तालिका में देखिये—

ग्रह	**रत्न**	**अंग्रेजी नाम**
सूर्य	माणिक्य	Ruby
चन्द्र	मोती	Pearl
मंगल	मूँगा	Coral
बुध	पन्ना	Emerald
वृहस्पति	पुखराज	Topaz
शुक्र	हीरा	Diamond
शनि	लोहा, नीलम	Sapphire

राहु	गोमेद	Hessonite
केतु	लहसनिया	Cat's eye

(१५) **लग्न के अनुकूल रत्न का चुनाव**—ज्योतिष शास्त्र में रत्नों का बहुत प्रयोग किया जाता है। लग्न का स्वामी जो ग्रह हो उस ग्रह से सम्बधित रत्न को पहनने का आदेश किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र में लग्न (Ascendant) का महत्व कुण्डली के शेष ११ भावों से कहीं बढ़ कर है। जीवन की प्राय: सभी आवश्यक वस्तुओं का समावेश लग्न में है। मनुष्य अल्पायु होगा या दीर्घजीवी; मनुष्य धनी होगा अथवा निर्धन; मनुष्य यशस्वी होगा अथवा अपमानित; मनुष्य स्वस्थ रहेगा अथवा रोगी;—इन सब बातों का निर्णय लग्न पर ही से किया जाता है। अत: लग्न का ज्योतिष में महत्व सुस्पष्ट है। यही कारण है कि ज्योतिषी लोग लग्न के स्वामी ग्रह के अनुकूल ही रत्न पहनने की अनुमति देते हैं ताकि आयु,धन यश, शक्ति आदि सभी आम वस्तुएँ व्यक्ति को अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकें।

(१६) किस लग्न के लिये कौन-सा ग्रह-स्वामी होता है और उस ग्रह के लिये कौन सा रत्न पहनना चाहिये यह बात नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जायेगी :—

लग्नराशि	**संख्या**	**स्वामीग्रह**	**अनुकूल रत्न**
मेष	१	मंगल	मूँगा
वृषभ	२	शुक्र	हीरा
मिथुन	३	बुध	पन्ना
कर्क	४	चन्द्र	मोती
सिंह	५	सूर्य	माणिक्य
कन्या	६	बुध	पन्ना
तुला	७	शुक्र	हीरा
वृश्चिक	८	मंगल	मूँगा
धनु	९	गुरु	पुखराज

मकर	१०	शनि	लोहा, नीलम
कुम्भ	११	शनि	लोहा, नीलम
मीन	१२	गुरु	पुखराज

(१७) **स्त्रियों के लिये विशेष नियम**—स्त्रियों की कुण्डली में भी उपर्युक्त नियम लागू किया जा सकता है और लग्न के स्वामी ग्रह के अनुरूप रत्न आदि पहनने का आदेश दिया जा सकता है। परन्तु स्त्रियों के लिये 'गुरु-ग्रह' का विशेष महत्व है। स्त्री की कुण्डली में 'गुरु' उस के पति का सदा सर्वदा कारक होता है। गुरु के बलाबल पर स्त्री के पति की आयु, उसका धन तथा स्वभाव अधिकतर निर्भर रहते हैं। चूँकि, कम से कम, भारत में स्त्रियां बहुधा अपने पति पर निर्भर होती हैं; अतः उनकी कुण्डली में गुरु का बलवान् होना नितान्त आवश्यक है। अतः जिन बालिकाओं के विवाह होने में विलम्ब हो रहा हो उनको 'पुखराज़' अवश्य पहिनना चाहिये। 'पुखराज' पहनने से 'गुरु' अधिक बलवान् होगा; जिस के फलस्वरूप विवाह अपेक्षाकृत शीघ्र होगा; क्योंकि देर से विवाह होने में कारण यही होता है कि स्त्री की कुण्डली में सप्तम भाव, सप्तम भाव का स्वामी तथा उसी भाव का कारक अर्थात् वृहस्पति पापी ग्रहों की युति अथवा दृष्टि द्वारा निर्बल पाये जाते हैं। इन तीन अंगों में गुरु का विशेष महत्व है। जब तीन अंगों में मुख्य अंग 'गुरु', पुखराज पहिनने से बलवान् होगा तो स्पष्ट है कि विलम्ब कम हो जायेगा।

(१८) जिन स्त्रियों की लग्न 'मिथुन' अथवा कन्या हो और उन की कुण्डली में गुरु को सूर्य, शनि अथवा राहु दृष्टि अथवा युति द्वारा प्रभावित कर रहे हों उनके लिये तो और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि वे पुखराज पहिने रहें क्योंकि ऐसी दशा में 'गुरु' न केवल 'पति' का कारक ही होता है बल्कि पति भाव का स्वामी भी। अतः स्पष्ट है कि गुरु पर पड़ने वाला पाप-प्रभाव अधिक अनिष्टकारी होगा। यदि ऐसी स्थिति में 'पुखराज' न

पहिना जावे, तो पति से पृथक् हो जाने तथा त्यक्त (Divorced) तक हो जाने की नौबत आ जाती है।

(१६) उदाहरण के लिये कुण्डली संख्या १ में लें। इस बालिका का जन्म २५/२६–६—१६४५को हुआ और जन्म समय विंशोत्तरी पद्धति के अनुसार सूर्य की महादशा के शेष वर्षादि १–६–८ थे।

कुण्डली सं० १
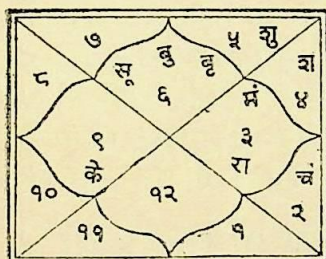
यह कन्या लग्न की कुण्डली है; अतः यहां 'गुरु' का सप्तमाधिपति तथा सप्तम भाव कारक एक साथ हो जाना अत्यन्त महत्व रखता है। अब पति-द्योतक गरु आदि पर थोड़ा विचार कीजिये। सूर्य न केवल अपनी दृष्टि से सप्तमभाव पर अपना प्रभाव डाल रहा है अपितु अपनी युति से सप्त-मेश तथा पति-कारक गुरु को भी प्रभावित कर रहा है। शनि भी अपनी तृतीय दृष्टि द्वारा उसी प्रतिनिधित्व शाली गुरु को प्रभावित कर रहा है। इसी प्रकार राहु-अधिष्ठित राशि का स्वामी, बुध भी अपनी युति द्वारा उसी गुरु तथा सप्तम भाव को प्रभावित कर रहा है। अब चूँकि सूर्य, शनि तथा राहु, तीनों के तीनों, पृथक्ता-जनक (Separative) ग्रह हैं अतः इन के प्रभाव का फल यह हुआ कि इस बालिका को उस के पति ने विवाह के एक मास के अन्दर ही अन्दर त्याग दिया। यदि लड़की को विवाह से पूर्व पुखराज पहनाया जाता तो बहुत सम्भव था कि बात त्याग तक न पहुँचती।

(२०) गुरु, धन का भी कारक है। मान लीजिये किसी व्यक्ति का जन्म कुम्भ लग्न में हुआ है और उसकी जन्म-कुण्डली में "गुरु" पर

शनि तथा मङ्गल की दृष्टि है—जैसा कि कुण्डली संख्या २ में दर्शाया गया है, ऐस स्थिति में व्यक्ति की आय का स्तर बहुत कम हो जाता है क्योंकि एक तो "गुरु" स्वयं "अर्थ" का कारक है; दूसरे वह यहां लाभाधिपति है और तीसरे वह धन भाव का स्वामी भी है। अतः "धन" का इस प्रकार का
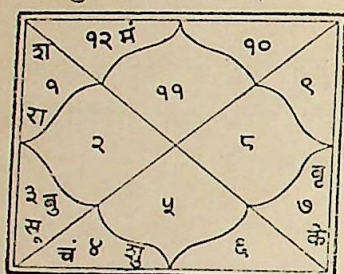
कुण्डली संख्या २

व्यापक प्रतिनिधि बनने वाला गुरु यदि पापप्रभाव में हो तो धन की मात्रा का कम हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में गुरु को बलान्वित करना अभीष्ट होगा और गुरु "पुखराज" पहिनने से बलान्वित होगा। इस प्रकार "पुखराज" का उपयोग धन के क्षेत्र में भी बहुत अधिक है।

(२१) "गुरु" जहां "पति" तथा "धन" का कारक है वहां यह ग्रह "**पुत्र**" का भी कारक है। अतः उपर्युक्त कुण्डली, जिस में कि वह पञ्चम भाव तथा उस के स्वामी के साथ-साथ पाप दृष्ट है, इस व्यक्ति के पुत्रहीन होने को बतला रहा है। यदि पुखराज पहनाया जाता तो कुछ लाभ की संभावना थी।

(२२) उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो गया होगा कि जब कुण्डली में किसी ग्रह के बलवान् किये जाने से लाभ पहुँचाना हो तो उस ग्रह से संबद्ध रत्न पहनना चाहिये। यदि किसीव्य क्ति का दिल कमजोर हो अथवा उस को दिल का दौरा पड़ने की संभावना हो तो उस व्यक्ति के "माणिक्य" धारण करने से उस का **सूर्य** बलवान् किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी स्त्री आदि को "गशी" का रोग हो अथवा किसी व्यक्ति को "मिरगी" का रोग हो तो अन्य उपचार के अतिरिक्त उस व्यक्ति के **चन्द्रमा** को बलवान् किया जाना अपेक्षित रहेगा। इस प्रयोजन के लिये उस व्यक्ति को **चान्दी की**

अंगूठी में मोती पहिनना चाहिये। यदि किसी व्यक्ति को "सूखे" (Atrophy of muscles) का रोग हो तो उसके **मङ्गल को बलवान् करना आवश्यक होगा।** ऐसा करने के लिये मूँगा पहिनाया जायेगा। यदि किसी व्यक्ति को **"दमा" की शिकायत है** अथवा वह **हरनिया आदि अन्तड़ियों** के किसी रोग से पीड़ित है तो उसे उचित है कि वह "**पन्ना**" पहिने; जिससे **मिथुन तथा कन्या राशि का स्वामी बुध** बलवान् हो सके। यदि किसी व्यक्ति को "अनपचा" है अर्थात् **खाया-पिया पचता** नहीं है अथवा उसे **जिगर की कोई शिकायत है**, तो उसे गुरु को बलवान् करना चाहिये और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये **पीले रङ्ग का पुखराज** पहिनना चाहिये। यदि किसी व्यक्ति को **"वीर्य" संबन्धी** कोई शिकायत हो तो उस को **शुक्र** ग्रह से संबंधित "**हीरा**" पहिनना चाहिये।

(२३) रत्नों के प्रयोग के संदर्भ में इतना ध्यान रहे कि जो **पापी संग्रह** शनि, मंगल आदि, अपनी स्थिति अथवा दृष्टि से **अनिष्ट की उत्पत्ति कर रहा हो उसको बलवान् नहीं करना चाहिये** अर्थात् उस ग्रह से संबन्धित रत्न नहीं पहिनना चाहिये। इस में कारण यह है कि यदि ग्रह से संबन्धित रत्न पहना दिया गया तो वह ग्रह और अधिक बलवान् होकर और अधिक अनिष्ट-कारी होगा। जैसे मान लीजिये कि किसी पुरुष अथवा स्त्री को कुण्डली में **कुंभराशि का सूर्य**, पुत्रभाव अर्थात् पञ्चम भाव में स्थित है तो ज्योतिष शास्त्र के अनुसार स्पष्ट है कि पृथक्ताकारक (Separative) ग्रह, सूर्य, अपनी शत्रुराशि में स्थिति आदि के कारण, गर्भों को पनपने न देगा और गर्भपात होते चले जावेगें। ऐसी स्थिति में सूर्य से संबन्धित "माणिक्य (Ruby) तथा स्वर्ण, यदि पहिना गया तो उलटा सूर्य बलवान् होकर पञ्चम भाव अर्थात् गर्भों को और अधिक हानि पहुँचायेगा।

(२४) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जीवन में एक ऐसे ग्रह की दशाभुक्ति चल रही होती है जो जन्मकुण्डली में पापघरों-तृतीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश—का स्वामी है; जैसे—कर्क लग्न वालों के लिये बुध, जो कि तृतीय तथा द्वादश भावों का स्वामी बनता है, अथवा मीन लग्न वालों का शुक्र जो कि तृतीयेश, अष्टमेश बनता है—ऐसी स्थिति में **बुध अथवा शुक्र** को "पन्ना" अथवा "हीरा" पहिनकर बलवान् नहीं बनाना चाहिये क्योंकि उनके बलवान् होने से पापी अनिष्ट भावों के स्वामी बलवान् होंगे और फलस्वरूप अनिष्ट की वृद्धि होगी। ऐसी दशा में तो इन बुध-शुक्र का निर्बल होना वांछनीय होगा क्योंकि पापी ग्रहों का निर्बल होना धन की वृद्धि करने वाला होता है। **ऐसी स्थिति में इन बुध शुक्र आदि पापी ग्रहों के शत्रु ग्रहों से संबन्धित रत्न पहिनना चाहियें** विशेषतया उस स्थिति में जबकि वे शत्रु ग्रह बुध आदि को अपनी दृष्टि आदि से प्रभावित भी कर रहे हों। ऐसा करने से "विपरीत राजयोग" की सृष्टि होगी अर्थात् पापियों का पाप नाश होकर धन आदि की प्रचुर उपलब्धि होगी। **उदाहरण** के लिये यदि किसी कर्क लग्न वाली कुण्डली में बुध, पञ्चम स्थान में स्थित हो तो बुध की यह स्थिति प्रशस्त है अर्थात् द्वादश तथा तृतीय भावों के अनिष्ट को नाश करने वाली है क्योंकि बुध इन दोनों ही स्थानों से अनिष्ट स्थान में अर्थात् द्वादश से षष्ठ और तृतीय से तृतीय स्थित होगा। ऐसी स्थिति में यदि उस बुध पर मङ्गल, शनि आदि पापी ग्रहों की युति अथवा दृष्टि हो और किसी नैसर्गिक शुभ ग्रह गुरु आदि की दृष्टि अथवा युति न हो तो बुध की यह अनिष्ट स्थिति अतीव लाभप्रद सिद्ध होगी और व्यक्ति को लाखों रुपयों का स्वामी बनादेगी। अतः निष्कर्ष यह निकला कि पापी भावों के स्वामियों को रत्नों द्वारा बलवान् नहीं करना चाहिये। हो सके तो निर्बल करना चाहिये।

(२५) जिन सरकारी कर्मचारियों की उन्नति (Promotion) रुकी हो उनको चाहिये कि वे अपनी जन्म कुण्डली में नवमाधिपति को बलवान् करने का प्रयत्न करें क्योंकि नवम भाव भाग्य (Career) तथा राज्य कृपा (Govt. favour) का है अतः नवमेश के उपयुक्त रत्न के धारण द्वारा बलवान् किया जाना पदोन्नति में सहायक होगा।

(२६) ज्योतिष शास्त्रानुसार "काल पुरुष" के अंगों के पीड़ित होने के कारण जिन रोगों की उत्पत्ति होती है उनके निवारणार्थ पीड़ित ग्रह का रत्न पहना कर उसे बलवान् करना चाहिये। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली सं ३ के इस व्यक्ति को **हरनिया** (Hernia) का रोग है। स्पष्टतया यहां पर ६ संख्या की राशि पर **सूर्य** तथा **शनि** का पृथक्ताजनक प्रभाव है। ६ संख्या राशि के स्वामी बुध पर सूर्य का युति द्वारा तथा राहु का दृष्टि द्वारा प्रभाव है। इसी प्रकार ६ नम्बर भाव तथा उसके स्वामी पर भी शनि का युति द्वारा प्रभाव है। अतः यहां बुध तथा शुक्र को बलवान् किया जाना उपयुक्त एवं हितकर होगा और एतदर्थ पन्ना तथा हीरा पहिनना आवश्यक होगा।
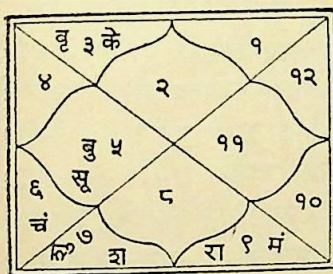
कु० सं० ३

(२७) निम्नलिखित कुण्डली सं ४ वाले को **दिल का दौरा** (Heatr

Attack) पड़ने की शिकायत थी। देखिये, केतु की पूर्ण पञ्चम दृष्टि पञ्चम भाव तथा उसके स्वामी **मङ्गल**, दोनों, पर है। इसी केतु की नवम पूर्ण दृष्टि पाँच संख्या की राशि तथा उसके स्वामी **सूर्य** पर भी है। अतः यहां हृदयद्योतक मङ्गल तथा सूर्य का बलवान् किया जाना उपयुक्त रहेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सोने की अंगूठी में **माणिक्य** (सूर्य) तथा **मूँगा** (**मङ्गल**) लगवाकर पहिनना चाहिये।
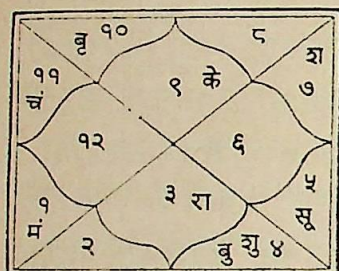
कु० सं० ४

(२८) निम्नलिखित कुण्डली सं ५ वाले व्यक्ति को **दमा** की शिकायत रही। यहां तृतीयाधिपति शुक्र, सूर्य तथा राहु के पाप प्रभाव में आ चुका है। अर्थात् पाप मध्यत्व में है, और उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि है। इसी प्रकार तृतीय राशि तथा उस का स्वामी बुध, मङ्गल की युति के प्रभाव में है। अतः शुक्र तथा बुध (सांस की नाली के प्रतिनिधि) का बलवान् किया जाना उपयुक्त होगा। इस के लिये **हीरा** तथा **पन्ना** पहिनाया जाना चाहिये, जिस से दमा के रोग को शान्त होने में सहायता मिले।
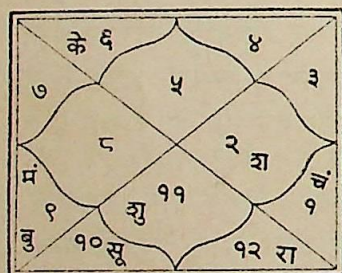
कु० सं० ५

कु० सं० ६
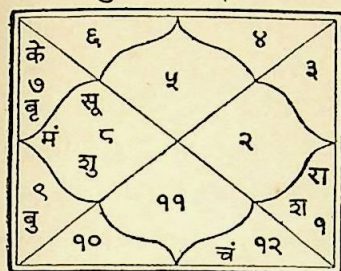
(२९) निम्नलिखित कुण्डली सं ६ में व्यक्ति को **आमाशय** (Stomach) में व्रण (ulcer) था। पेट के स्थान अर्थात् पञ्चम भाव में सूर्य बैठा है जो कि वहाँ शनि-अधिष्ठित राशि का स्वामी तथा द्वादशेश होकर आया है और इस प्रकार पेट को हानि पहुँचा रहा है। पञ्चमेश शनि भी, अनिष्ट द्वादश भाव में शत्रु राशि में स्थित होकर प्रबल मङ्गल द्वारा जो कि राहु-अधिष्ठित राशि का स्वामी भी है, पीड़ित है। अतः पञ्चम शनि निर्बल है और पेट रोग की शान्ति के लिये उसका बलवान् किया जाना आवश्यक है। अतः व्यक्ति को केवल लोहा या नीलम पहिनने का आदेश देना चाहिये।

कु० सं० ७

श ७ | ५
८ | ६ | ४ रा
९ बु | ३
वृ शु | सू
१० के | १२ | २
११ | चं मं १
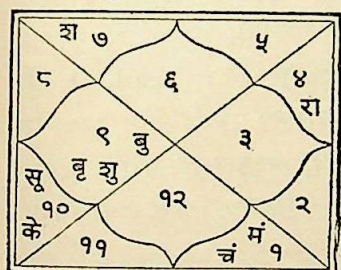
(३०) एक और कुण्डली सं ७ लीजिये इस व्यक्ति को फेफड़ों का क्षय (T. B. of Lungs) हो गया था। देखिये चतुर्थ भाव तथा उसके स्वामी (फेफड़ों के प्रतिनिधि) चतुर्थ राशि तथा उसके स्वामी (पुनः फेफड़ों के प्रतिनिधि), चन्द्र—सभी पर शनि की पूर्ण दृष्टि अर्थात् प्रभाव है और शनि यहाँ षष्ठेश होने के कारण तथा केतु-अधिष्टित राशि का स्वामी होने के कारण, रोग का और भी अधिक प्रतिनिधित्व करता है। अतः अपनी दृष्टि द्वारा यह शनि बहुत व्यापक अनिष्ट की उत्पत्ति "काल पुरुष" के नम्बर ४ के अङ्ग—फेफड़ों (Lungs) में कर रहा है। यहां चूँकि गुरु तथा चन्द्र फेफड़ों के प्रतिनिधि होकर पीड़ित हैं, अतः उनका बलवान् किया जाना अपेक्षित होगा। इस दशा में "**पुखराज**" तथा "**मोती**" पहिनने से रोग की शान्ति में सहायता मिलेगी।

(३१) जब कोई ग्रह **त्रिक** (अनिष्ट) भाव में विना किसी शुभ युति अथवा दृष्टि के पड़ा हो तो वह ग्रह अपने "धातु" संबधित रोग को देने वाला होता है। निम्नलिखित कुण्डली सं० ८ में चन्द्र की ऐसी ही स्थिति है। चन्द्र की इस अनिष्ट स्थिति के कारण चन्द्र की धातु अर्थात् रक्त (Blood) सम्बन्धी दोष अथवा रोग कहना चाहिये। ऐसी स्थिति में चन्द्र का बलवान् करना आवश्यक होता है। **चन्द्र** को **चान्दी** की अंगूठी में **मोती** पहिन कर बलवान् किया जाय जिस से रक्तदोष के शान्त होने में सहायता मिले।

कु० सं० ८
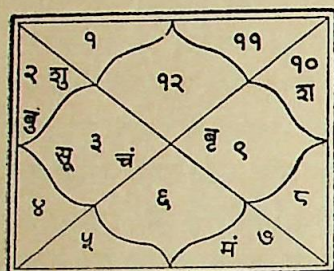
(३२) इसी प्रकार की अनिष्ट स्थिति यदि मङ्गल ग्रह की हो, जैसा कि यहां कुण्डली सं० ९ में है, तो **सूखे** (Atrophy of muscles) **के रोग की** संभावना रहती है। इस रोग के निवारणार्थ **मङ्गल** को **सूँगा** पहिन कर अथवा पहिनवा कर बलवान् करना चाहिये।
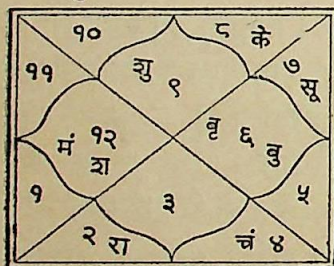
कु० सं० ९

जिन व्यक्तियों को किसी मानसिक रोग जैसे **पागलपन** आदि की संभावना हो उनकी कुण्डली में **बुध तथा चन्द्र** अवश्य निर्बल स्थिति में होते हैं। अतः अन्य बातों के अतिरिक्त **बुध तथा चन्द्र** का बलवान् किया जाना अनिवार्य होता है। बुध बुद्धि का ग्रह है और चन्द्र भावनाओं का स्पष्ट है कि ऐसे रोग में मस्तिष्क तथा भावनाओं—दोनों—का बिगाड़ होता है। **बुध तथा चन्द्र** को बलवान् करने के लिये **पन्ना** तथा **मोती** पहिनने का नियम है ही। इस प्रकार ज्योतिष में रत्नों के धारण करने से रोगों की शान्ति में भी सहायता ली जाती है। और लेनी चाहिये।

नव रत्नों का परिचय

सूर्य रत्न--माणिक्य (लाल)

: १ :

सर्वोत्कृष्ट माणिक्य बर्मा का; भारत में माणिक्य की नयी खान; धधकते कोयले-सरीखी ललक; एक में दो रंग; षट्कोण तथा द्वादशकोण तारा; अंधेरे में चमकना; वात, पित्त कफ़—तीनों का शामक; बुद्धि वर्धक; उदर रोगों का शत्रु; क्षयरोग का घातक; विपदा का पूर्व सूचक ।

विविध नाम : **संस्कृत**—माणिक्य, पद्मराग, लोहित, शोणरत्न, रविरत्न, शोणोपल, कुरुविन्द, सौगन्धिक, वसुरत्न आदि अनेक। **हिन्दी-पंजाबी**—चुन्नी । **अंग्रेजी**—Ruby **उर्दू-फारसी**—याकूत ।

भौतिक गुण :- कठोरता—९; आपेक्षिक घनता—४.०३; वर्तनांक १.७१६—१.७७; दुहरावर्तन ०.००८; द्विवर्णिता तीव्र; रासायनिक रचना—एल्यूमिनयम ऑक्साइड।

कुरुन्दम समूह—कठोरता में हीरे के बाद कुरुन्दम समूह के रत्नों का स्थान है। इस समूह के लाल, नीलम तथा एमेरो आदि रत्नपदार्थ प्राचीनकाल से जाने-पहचाने चले आ रहे हैं। खनिज विज्ञान की नयी खोज के अनुसार ये सब एक ही प्रकार के तत्त्वों

से मिलकर बने हैं—एल्यूमिनियम तथा ऑक्सिजन इनके मूल तत्त्व हैं। लाल और नीलम के सिवा इस समूह में दूसरे भी ऐसे रत्न हैं जो अपने चटकीले रंगों के कारण प्रसिद्ध हैं। परन्तु माणिक्य की जगमगाहट अपने स्थान पर है तो नीलम का नीला रंग अपनी आन-बान के लिये प्रसिद्ध है। रंगरहित कुरुन्दम का श्वेत नीलम; हरे का हरा नीलम, अथवा प्राच्य पन्ना, बैंजनी का बैंजनी नीलम आदि नाम नीलम और पन्ना नामों के मान के सूचक हैं। माणिक्य (लाल) तथा नीलम के अतिरिक्त शेष सभी रंगदार कुरुन्दमों का एक नाम 'चटकीले नीलम' भी प्रसिद्ध है।

कुछ ऐतिहासिक तथ्य—(१) मणिक्य की खानें बर्मा में सदियों से ज्ञात हैं। सर्वोत्तम मणिक्य उत्तरी बर्मा के मोगोक जिले से प्राप्त हुए हैं। इस जिले में एक बहुत लम्बा-चौड़ा प्रदेश मणिक्यों का घर है। परन्तु इसमें से बहुत थोड़ा क्षेत्र ही ऐसा है कि जिससे मणिक्य निकाले जा सके हैं। शुरू में इनपर वहां के राजाओं का ही एकाधिकार था। कहते हैं कि बर्मा के एक चतुर राजाने इस बहुमूल्य प्रदेश को एक महत्त्वहीन वस्ती के बदले पड़ोस के चीनी शाम लोगों से लिया था। मणिक्य खोदने का काम काफी कठिन था, इसलिये यह काम उन कैदियों से लिया जाता था कि जिन्हें राजा अनचाही प्रजा समझ लेता था।

आगे चलकर मणिक्य खोदने के लिये लाइसेन्स देने की पद्धति जारी की गयी। इन खनिजों के बदले में कुछ धन तो देना ही पड़ता था परन्तु जिन मणिक्यों का मूल्य २००० रु० से अधिक आंका जाता था, वे भी राजा ले लेता था। यहां से बड़े रत्न कभी-कभी ही मिलते थे—परन्तु ऊपर लिखे नियम के कारण यह भ्रम भी फैला कि खनिक लोग बड़े रत्नों को तोड़ डालते हैं। सन् १८८५ ई० में बर्मा अंग्रेजों के अधिकार में आ गया और अब इन खानों का काम रूबी माइन्स लि० नाम की अंग्रेजी कम्पनी करने लगी।

पुराने समय में मिले बढ़िया मणिक्य बर्मा के राजवंश के पास ही रहे। १८७५ में बर्मा के राजा ने धनाभाव से बाधित होकर दो बढिया लाल बेचे थे ; इनमें से एक ३७ कैरट तथा दूसरा ४७ कैरेट था। बाद में ये लन्दन में काटे गये। और अब वे क्रमशः ३२.३ तथा ३८.६ कैरट रह गये—जो क्रमशः दस तथा २० हजार पौंड में बिके। बर्मा में एक बार ४०० कैरेट भार का भी लाल मिला था। इस के तीन टुकड़े किये गये—दो को तो साज-संवार कर ७० तथा ४५ कैरट के नग बनाये गये और तीसरा टुकड़ा अपने मूलरूप में ही कलकत्ते में ७ लाख रुपयों में बिका। कम्पनी के अधिकार के काल में भी एक बार १८.५ कैरेट का बढ़िया मणिक्य मिला था जो कट कर ११ कैरेट का रह गया और फिर ७ हजार पौंड में बिका। एक ७७ कैरट का मणिक्य १८९९ में मिला जो भारत में १९०४ में चार लाख रुपयों में बिका। १८९० में २०४ कैरेट तोल का एक मणिक्य बर्मा की खानों से निकला था।

रूस के पहले के शाही ताज में एक काफी बड़ा माणिक्य था जो १७७७ ई० में रूस की रानी कैथेराइन को भेंट में मिला था। अंग्रेजी ताज में भी एक बड़ा लाल रंग का रत्न है जिस को पहले मणिक्य समझा जाता रहा था। परन्तु, वह वस्तुतः लाल कंटकिज (स्पाइनेल) है और मणिक्य इस कारण समझ लिया गया था कि ये दोनों खनिज रत्न कंकड़ों के साथ पाये जाते हैं।

१९०८ ई० में संश्लिष्ट (अल्यूमिनयम और ऑक्सिजन तत्त्वों को कृत्रिम ढंग से संश्लेषितकर बनाये गये) माणिक्य बाजार में आ गये। इनका मूल्य प्राकृतिक माणिक्यों की तुलना में नहीं के बराबर है; एक बढिया सच्चे माणिक्य का मोल जब कि ५०० पौंड प्रति कैरेट हो तो, संश्लिष्ट माणिक्य उसकी तुलना में केवल २शि० प्रति करेट ही रहेगा।

प्राप्ति स्रोत—सबसे अधिक मूल्यवान् माणिक्य ऐसे पहाड़ों में

पाये जाते है कि जिनमें 'ग्रेनाइट' (तामड़ा या रक्तमणि), ग्नीज (अभ्रक की जैसी परतदार) और काचमणि या बिल्लौर (क्वार्ट्ज) की चट्टाने हों। भारत में काश्मीर रियासत में ऐसी चट्टानें पायी जाती हैं। प्रसिद्ध घुमक्कड़ लेखक श्री सूफी लछमन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'रत्नावली' (उर्दू) में लिखा है कि मैंने ऐसी चट्टानें हिमालय पर्वत के बहुत से स्थानों पर देखी हैं। उनकी सम्मति में भारत के साहसी युवकों को इन्हें प्रकाश में लाकर अतुल ऐश्वर्य उपार्जित करना चाहिये।

ऐसे ही स्थानों पर कंटकिजमणि (स्पाईनेल) भी अपने अनेक विभेदों—माणिक्य कंटकिज-मणि, बैलास रूबी, रूबी सेल आदि—में मिलती है। इन में से बैलास रूबी रत्नों की श्रेणी में गिना जाता है। काफी कठोर होने के कारण यह एक टिकाऊ रत्न है और अधिकतर अंगूठियों में जड़ा जाता है। रोम निवासियों ने मणिक्य को भी, सम्भवत: इसके जाज्वल्यमान रंग के कारण, एकसा समझा और स्पाइनेल तथा तामड़ा के साथ माणिक्य की गिनती की। इन सभी कठोर पदार्थों को रोमन लोग कार्बुंक्लस तथा यूनानी 'ऐंथैक्स' कहते थे—इन दोनों का एक ही अर्थ 'चिनगारी' है।

स्पाइनल मणि भी देखने में मणिक्य जैसी लगती है। परन्तु अपनी कठोरता, आपेक्षिक घनत्व, तथा अन्य गुणों में यह माणिक्य से बहुत भिन्न है। इसको लाल और नीलम काट सकते हैं। इसकी चमक बिल्लौरी होती है। इस के भीतर से परावर्तित प्रकाश पीली आभा लिये आता है। अनजान लोग मणिक्य के धोखे में कंटकिज मणि खरीद लेते हैं। असली माणिक्य की परख के लिये आगे देखिये।

विविध खानों के माणिक्य—(१) यह ऊपर कहा जा चुका है कि उत्कृष्ट माणिक्य (लाल) बर्मा से प्राप्त होता है। यहाँ के माणिक्य का रंग गुलाब की पत्ती के रंग से ले कर गहरे लाल रंग तक का होता है।

(२) स्याम देश की खानों से प्राप्त उज्ज्वल से उज्ज्वल माणिक्य भी बर्मा के माणिक्य की अपेक्षा अधिक कालापन लिये होता है। स्याम के माणिक्य में तारे की-सी झिलमिलाहट (तारकितता) नहीं उत्पन्न की जा सकती।

(३) श्री लंका के माणिक्य में बर्मा के माणिक्यकी अपेक्षा पानी अधिक और लोच कम होता है। ये पीले और चितकबरे मिलते हैं।

(४) काबुल के माणिक्य में पानी (मोटा), और चुरचुरापन होता है। इसका रंग सुन्दर होता है। कोई-कोई माणिक्य बर्मा के माणिक्य से भी अधिक सुन्दर निकल आता है।

(५) टैंगानिका (अफ्रीका) का माणिक्य बहुत चुरचुरा होता है। इसमें लाल रंग के साथ-साथ श्याम आभा तो होती ही है, परन्तु किसी-किसी खण्ड में पीले रंग की आभा भी होती है; जिससे यह रक्त-पीत दीखने लगता है। यह पीत आभा ही स्याम देश के माणिक्य को इससे भिन्न बतलाती है।

(६) दक्षिण भारत के कांगियन स्थान पर माणिक्य की एक नयी खान चालू हुई है। यह **कांगियन माणिक्य** अपारदर्शक, श्याम-नील आभा से युक्त, मैलासा और नरमसा होता है। काटने पर पतले-पतले टुकड़े हो जाने पर इसमें पानी दीखने लगता है।

फेरुकृत रत्न परीक्षा में—१ पद्मराग, २ सौगंधिक, ३ नीलगन्धि, ४ कुरुविंदी, और ५ जामुनिया—माणिक्य की ये पांच जातियाँ बतायी हैं। उसके अनुसार **पद्मराग**—सूर्य की भांति किरणें फैलाता है; वह खूब चिकना, कोमल, अग्नि जैसा, तपे हुए सोने-जैसा और अक्षीण होता है। **सौगंधिक** वह कहलाता है जो किंशुक के फूल जैसा, कोयल--सारस व चकोर की आँख जैसा, अनारदाने के रंग का होता है। **नीलगंधि** कमल, आलता, मूँगा और ईंगुर के समान कुछ-कुछ नीलाभ और खद्योत की कांति वाला होता है। **कुरुविंद**

जाति का माणिक्य पद्मराग तथा सौगंधिक जैसी प्रभावाला परन्तु परिमाण में छोटा और पानीदार होता है। **जामुनिया** जामुन व लाल कनेर के फूल जैसे रंग का होता है।

"आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार लाल कमल की पंखुड़ियों की-सी दमक वाला, पारदर्शक, चिकना, बड़ा, सुडौल, अच्छे रंग का, गोल, लम्बा माणिक्य श्रेष्ठ होता है।

फेरू की रत्नपरीक्षा में अच्छे माणिक्य के गुण सुच्छाया, चिकनापन, लालकांति, कोमलता, भारीपन, सुडौलपन तथा बड़ा आकार, बतायें हैं।

'रसरत्नसमुच्चय' में माणिक्य की एक जाति का नाम 'नीलगन्धि' लिखा है—उसके अनुसार नीलगन्धि माणिक्य बाहर से लाल और भीतर से नीला (नीलगर्भकिरण) होता है।

एक अन्य प्राचीन लेखक के अनुसार श्रेष्ठ माणिक्य को दूर से देखने पर वह पिघली लाख के रंग का, लाल कमल के रंग का, कान्धारी अनार के दानों के रंग का और पठानी लोध्र के ताजा खिले फूल की सी रंगत का दीखता है। इसका लाल रंग गुलाबी से लेकर बैंजनीपन लिये लाल रंग तक पहुंचता है। सबसे अच्छा माणिक्य कबूतर के खून जैसे वर्ण का होता है—इसमें बैंजनी आभा भी होती है।

माणिक्य के दोष—'आयुर्वेद प्रकाश' तथा अन्य प्रामाणिक स्रोतों के अनुसार, वह माणिक्य अशुभ अथवा दोष युक्त माना जाता है जो (१) चमक से रहित अथवा सुन्न हो; (२) शर्करिल अथवा बालू के रेत के कणों के समान किरकिरा हो; अथवा चुरचुरा (crisp) हो; (३) जो दूध जैसा हो (दूध का दोष); (४) धूसर अथवा मैले रंग का हो; (५) या धुंए के रंग का हो; (६) जिस पर काला या सफेद दाग हो; (७) जो कम पारदर्शक (जठरा) हो; (८) शहद के रंग का अथवा इस रंग के छींटों वाला हो; (९) हलका हो;

(१०) विकृत हो (११) जिस पर चीर हों और (१२) जिस में अभ्रक की परतें हों ।

परन्तु यह भी सच है कि सर्वथा निर्दोष और बड़े आकार के माणिक्य प्रायः नहीं मिलते; इसलिये यदि किसी के पास अज्ञात **खान का कोई बड़ा और निर्मल माणिक्य दिखायी दे तो उसको पहले तो संदेह की दृष्टि से ही देखना चाहिये ।**

विज्ञान द्वारा परीक्षित प्रकाशीय तथा भौतिक गुण : रंग—जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, रंगीन पत्थरों में से कुरुन्दम समूह के पत्थर कई बातों में सबसे अधिक महत्व रखते हैं। और साधारणजन तो इनमें से माणिक्य और नीलम से ही अधिक परिचित हैं--पन्ना ही एक मात्र वह दूसरा रंगीन महारत्न है जिसे साधारण जनता खूब जानती है। कुरुन्दम जाति केवल गहरे लाल से लेकर जामनी-लाल रंग तक के रत्न ही माणिक्य गिने जाते हैं; शेष सभी रंगों वाले—हलके लाल तथा गुलाबी तक भी, नीलम कहलाते हैं।

द्विवर्णिता—बर्मा की लाल मणियों में तीव्र द्विवर्णिता पायी जाती है। यह दुहरा (युग्म) रंग, हलका नारंजी-लाल तथा गहरा जामनी-सा लाल होता है। यह हम पहले ही बता आये हैं कि यह गुणखनिजों की भीतरी बनावट के कारण होता है। घनाकार तथा रवाहीन रचना वाले खनिजों में द्विवर्णिता नहीं पायी जाती। न किसी रंगरहित खनिज या रत्न में यह गुण होता है। ऐसे खनिजों के भीतर से गुजरने वाली किरणें सब दिशाओं में एक ही वेग से चलती हैं। इन्हें समवर्तिक कहते हैं। **दुहरे वर्तन** के कारण माणिक्य में किनारे भी दुहरे दिखायी देते हैं ।

माणिक्य का अपकिरणन—०·०१८ है, जो हीरे के अपकिरणन से बहुत कम है; इसी कारण माकिक्य तथा कुरुन्दम समूह के दूसरे रत्न हीरे से कम जाज्वल्यमान होते हैं। इसी लिये लाल और नीलम का मुख्य आकर्षण उनका अपना-अपना रंग ही होता है।

कुरुन्दम समूह के रत्नों का **आपेक्षिक घनत्व** ३.९५ से लेकर ४.०५५ तक है। माणिक्य का ४.०१ है। रासायनिक संरचना के अनुसार इस में ऐल्यूमिनियम तथा ऑक्सीजन--ये दो ही तत्व हैं—दोनों का आ. घ. क्रमशः २.६ तथा ०.००१४ हैं; फिर भी इन दोनों से बने माणिक्य का आ. घ. ४.०१ होना **एक पहेली** ही है।

बर्मा तथा लंका के सुन्दर असली माणिक्य और संश्लिष्ट (कृत्रिम) माणिक्य पराबैंगनी किरणों में ऐसे जगमगाते है कि मानो वे जल रहे हों। यदि असली और कृत्रिम को साथ-साथ रखकर देखा जाय तो बनावटी असली से भी अधिक चमकते हैं। यदि इस समय इसको अंधेरे कमरे में ले जाया जाय तो यह और भी अधिक प्रतिदीप्त होता है। क्ष-किरणों में भी दोनों ही चमकते हैं; हां; क्ष-किरण को हटा लेने पर भी कृत्रिम चमकता रहता है (विशेषतया अंधेरे में) परन्तु असली नहीं चमकता। कृत्रिम में **स्फुरदीप्ति** का गुण हौता है, असली में नहीं होता।

तारकिलता—कुरुन्दम समूह के सभी अर्धपारदर्शक से लेकर पारभासी तक रत्नों को, जिनमें ऐसे लाल तथा नीलम भी, सम्मिलित हैं, जब काटकर उनका ऊपरी पृष्ठ उन्नतोदर बना दिया जाता है तो उसमें शिखर पर से झाँक कर देखने पर भीतर ६ तथा १२ कोनों के तारे दिखायी देते हैं। तारकितता का यह गुण असली माणिक्य की एक विशेष पहचान भी है।

असली नकली की परख—स्पष्ट है कि माणिक्य का भ्रम माणिक्य से मिलते-जुलते रत्नों में ही सम्भव है। पहला भ्रम तो उन रत्नों में होना सम्भव है कि जो असली हैं—रूप-रंग आदि में माणिक्य से मिलते हैं, परन्तु वास्तव में माणिक्य नहीं हैं। असली माणिक्य-सरीखे लगने वाले रत्न निम्मलिखित हैं---कंटकिज मणि (spinel) विक्रांत, शोभामणि। मनुष्यकृत फिर दो प्रकार के हैं—एक तो काच और प्लास्टिक के बनाये हुए नकली अथवा अनुकृत

माणिक्य। और दूसरे वे जो ऐल्युमिनियम तथा ऑक्सीजन तत्वों को तथा उनमें रंजक (रंगने वाले) तत्वों को मिलाकर बनाये जाते हैं—अर्थात् संश्लिष्ट माणिक्य। और तीसरे-दो प्रकार के रत्नों को जोड़कर बनाये गये युग्मैक माणिक्य।

संश्लिष्ट माणिक्य—की रासायनिक व संरचना और रवे की आकृति तथा उसकी बनावट, असली रत्न जैसी ही होती हैं—इसीलिये उनके भौतिक गुण तथा प्रकाशीय विशेषताएँ भी एक-सी होती हैं। इसलिये इनमें अन्तर बताना कठिन रहता है। फिर भी नीचे लिखी परीक्षाएँ पर्याप्त निर्णायक रहती हैं—

(१) परख के लिये आये रत्न में **अन्तः प्रविष्ट वस्तुओं** अथवा **अंतरावेशों की आकृति**—संश्लिष्ट माणिक्य में गोल-गोल वायु से भरे बुलबुले होते हैं। ये उसमें प्रायः वक्ररेखा में स्थित होते हैं। प्राकृतिक माणिक्यों में ये नहीं होते। बनाने वाले वैज्ञानिक इस कोशिश में हैं कि ऐसे संश्लिष्ट पारदर्शक माणिक्य बनाये जायें कि जिनमें ये वायु-बुलबुले न हों।

यद्यपि प्राकृतिक या सच्चे माणिक्य के भीतर भी अन्तरावेश होते हैं—परन्तु ये सदा **नोकीले** (Angular) होते हैं। रेशम अर्थात् पतले, सूइयों सरीखे अन्तरावेशों का होना कुरुन्दम वर्ग के रत्नों की एक लाक्षणिक पहचान है।

(२) संश्लिष्ट माणिक्य के बनने की अवस्था में, उसके भीतर धारियाँ पड़ जाती है—जो वक्ररेखाओं के रूप में होती हैं—कोशिश यह भी की जा रही है कि ये रेखायें संश्लिष्ट माणिक्य में न बनने पावें। रेखाओं को देख पाने के लिये माणिक्य को मिथाइलीन आयोडाइड अथवा ब्रोमोफोर्म द्रव में डाल देते हैं। इनके वर्तनांक संश्लिष्ट रत्न के वर्तनांकके लगभग बराबर होते हैं। इसलिये द्रवमें डाल देने पर रत्न तो प्रायः अदृश्य हो जाता है और अन्तरावेश स्पष्ट दिखायी देने लगते हैं। माणिक्य में इनको देख लेना सरल सिद्ध होता है।

(३) बर्मा के माणिक्यों में रंग एक सार नहीं होता; संश्लिष्ट रत्नों का रंग एकसार दिखायी देता है।

फिर निम्न बातें भी इस परख में काम आ सकती हैं—

(१) संश्लिष्ट रत्न का मूल्य असली के मुकाबले में बहुत ही कम होता है, इसलिये इसको बनाने में मनुष्य सतर्क नहीं रहता। रगड़कर चमकाते समय उत्पन्न ताप पहलों के जुड़ने के स्थानों को प्राय: चटका देता है।

(२) अनुकृत (काँच) या इमिटेशन माणिक्य को नेत्र परख ने पर गरम लगता है, असली ठंढ़ा।

(३) हाथ में लेने पर असली, इमिटेशन की अपेक्षा भारी लगता है—असली का आ. घ. (दड़क) अधिक होती है।

(४) चीर होगी तो वह नकली में कांच की भांति चमकदार तथा टेढी-मेढी होगी।

(५) माणिक्य से मिलते-जुलते रत्नों—कंटकिज, विक्रांत तथा कांच की अनुकृतियों और साधारण युग्मैक रत्नों में द्विवर्णिता जरा भी नहीं होती—जबकि असली माणिक्य में तीव्र द्विवर्णिता होती है। शोभामणि में द्विवर्णिता होती है परन्तु उसका लाल रंग माणिक्य के लाल रंग से नहीं मिलता। लाल कंटकिज का रंग भी असली मणिक्य के रंग से मेल नहीं खाता–इसका रंग ईंट के रंग सा अथवा नारंगी रंग के समान होता है। फिर कंटकिज में द्विवर्णिता भी नहीं है।

चिकित्सा में प्रयोग—आयुर्वेद शास्त्रों में कहा गया है कि **'माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत्'** अर्थात् चिकित्सार्थ रत्नों का प्रयोग करने में निपुण वैद्यजन माणिक्य को मधुर, चिकना, वात-पित्त का नाशक तथा उदर रोगों में लाभकारी बताते हैं। चुन्नी-भस्म दीर्घ आयुष्य प्रदान करती हैं, वात, पित्त तथा कफ—इन तीनों रक्षक तत्त्वों को शान्त करती है; क्षयरोग, उदरशूल, फोड़ा, घाव,

विष क्रिया, चक्षुरोग तथा कोष्ठबद्धता को दूर करती है।

वर्णचिकित्सा के आधार पर चुन्नी का प्रयोग, नियमानुसार बनायी गयीं माणिक्य-गोलियों के द्वारा किया जाता है। माणिक्य: गोलियाँ पीलिया, रक्त प्रवाह की अपूर्णता, क्षय रोग, दुर्बलता, हर्निया, बुद्धिहीनता, लकवा आदि रोगों को शान्त करती हैं।

दिव्यशक्ति—प्राचीन काल से ही माणिक्य का माहात्म्य बखान किया जाता रहा है। युनानी समझते थे कि माणिक्य धारण करने वाले पर विष का असर नहीं होता, यह प्लेग से बचाता है; शोक को भगाता है, विलास-वैभव के दुष्प्रभावों को दूर करता है और मनुष्य के मन को बुराइयों में नहीं भटकने देता। कहते हैं कि अरागॉन की कैथेराइन को जब तलाक दिया जाने लगा तो उसके माणिक्य (जो उसने पहना हुआ था) का रंग बदल गया था।

कौन धारण करे ?—माणिक्य सूर्य का रत्न है। यदि किसी के जन्म के समय सूर्य अनिष्टकारी हो तो उसके अनिष्ट को दूर करने के लिये माणिक्य धारण करना चाहिये। सूर्य का प्रभाव उसकी सिंह राशि में माना गया है - अर्थात् १५ अगस्त से १४ सितम्बर तक उत्पन्न व्यक्तियों को माणिक्य धारण करने से इसका लाभ मिलताहै।

धारण विधि—कम से कम ३ रत्ती का माणिक्य अपने जन्म मास की १, १०, १९ और २८ वीं तारीख में तथा रविवार को अथवा अन्य मित्र-महीनों—जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, अगस्त, सितम्बर. अक्तूबर तथा दिसम्बर—में धारण करना चाहिये। इसके धारण करने का मंत्र निम्नलिखित बताया गया है—

'आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

बदल—माणिक्य हीरे से भी अधिक मूल्य का रत्न है। कभी-कभी तो इसका मूल्य हीरे से तिगुना हो जाता है। इसलिये जो लोग

इसको नहीं खरीद सकें वे कंटकिज (spinel) अथवा तामड़ा (garnet) धारण कर सकते हैं।

चन्द्र रत्न मोती

: २ :

घोघे का पाला-पोसा अनुपम रत्न; सतरंगी मुक्ताभा; सीप में मोती बढ़ने की प्रक्रिया; मानव द्वारा की गयी अद्भुत नकल; असली-नकली में पहचान ; हृदय को बलदायक; स्मरणशक्ति का वर्धक; लाज-लावण्य आदि स्त्री-गुणों का वर्धक।

विविध नाम : संस्कृत—मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज, इन्दुरत्न,; **हिन्दी-पंजाबी**-मोती; **उर्दू-फारसी**-मुरवारीद; **अंग्रेजी** Pearl।

भौतिक गुण—जैविक रचना; रासायनिक तत्त्व-कैल्शियम कार्बोनिट; **आपेक्षिक घनत्व** २·६५ या २·६९ से लेकर २·८४ या २·८९ तक। **कठोरता**—३·५–४ मोतियों के भीतर परतों की स्थिति लगभग समकेन्द्रिक तथा समान्तर; अपारदर्शक।

कदली, सीप, भुजंगमुख स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥

स्वाति नक्षत्र के उदय रहते बरसी बूंद जब घोंघे के खुले मुँह में समाती है तब वह **मोती** बन जाती है; वही बूंद केले में जाकर कपूर और सांप के मुँह में पड़कर हलाहल विष बन जाती है। हमारे साहित्यिक तथा सन्तजन न जाने कब से संगति के प्रभाव को समझाने में स्वाति-बूंद का यह उदाहरण देते आये हैं। खारे समुद्र

के वासी घोंघे के पेट में मोती बनता है—यह कहावत इस तथ्य को तो सुझाती ही है, पर साथ ही यह भी बताती है कि घोंघे के पेट में मोती सदा ही नही बनता—उसके बनने की भी एक खास घड़ी ही होती है। कब स्वाती नक्षत्र के उदय रहते पानी बरसेगा और कब घोंघें का मुँह खुलेगा कि उसमें वह बूँद समाये और मोती बनाये। बेचारे गोताखोर, बच्चे और ७० वर्ष तक के बूढ़े गोताखोर, भी गोते लगा-लगा कर थक कर चकनाचूर हो जाते हैं; वे समुद्र की तलहटी में से हजारों सीपें निकालकर उन्हें खोलते हैं–पर क्या सभी में से मोती निकलता है? नहीं, कदापि नहीं। सन् १६४७ में एक नौका ने ३५००० सीपें एकत्रित कीं परन्तु उनमें से केवल २१ मोती निकले; इन २१ में से भी केवल तीन ही रत्न थे।

हम पहले बता आये हैं कि मानव ने 'रत्न' नाम उस पदार्थ को दिया है जिसमें तीन गुण अवश्य हों—सौन्दर्य, टिकाऊपन और दुर्लभता। ये तीन गुण किसी रत्न में कम, किसी में अधिक पाये जाते हैं; पर पाये अवश्य जाते हैं। घोंघे के पेट में उत्पन्न होकर पालित-पोषित 'मोती' सुन्दर होने के साथ-साथ कितना दुर्लभ है, यह बात इसकी जन्म कथा से भली-भांति स्पष्ट हो जाती है।

आज के वैज्ञानिक भला इस बात को क्यों मानने लगे कि मोती का जन्म **अचानक** होता है। परन्तु इसकी दुर्लभता तो आंखों से साफ दिखायी दे रही थी। वैज्ञानिकों की कल्पना है कि घोंघे के पेट में कभी-कभी कोई विजातीय पदार्थ अचानक जा पैठता है, वह उसकी चुभन को अनुभव करता है; उसे निकालने की पूरी कोशिश करता है; कभी-कभी सफल भी हो जाता है; परन्तु जब सफल नहीं हो पाता तो उसको अपने ही अंगों से निकाले गये एक पदार्थ की तहें चढ़ा-चढ़ा कर ऐसा चिकना बना लेता है कि फिर उसको वह वस्तु चुभती नहीं; पीड़ा नहीं पहुँचाती। घोंघे की सीप को खोल-

कर देखने वाले गोताखोर की आंखों को चौंधिया देने वाला यही पदार्थ तो '**मोती**' है। घोंघे के पेट में जा पैठने वाला विजातीय पदार्थ कंकड़ का कोई कण, दूसरे पर पलने वाला कोई छोटा कीड़ा, सींग-सा कठोर कोई अकार्बनिक पदार्थ, कोई भी होना सम्भव है। परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वैज्ञानिकों ने मोतियों को काट कर देखा है—परन्तु उन्हें आज तक भी कभी कोई ऐसा पदार्थ मोती में से मिला नहीं है। 'आयुर्वेद प्रकाश' के टीकाकार का यह लिखना असंगत प्रतीत नहीं होता कि "शुक्ति के ढक्कन और कीट (घोंघे) की त्वचा के बीच स्वाती नक्षत्र के जल-विन्दु जाने की कहावत और शास्त्रीय आधार अनन्तकाल से सुना जाता है और यह सत्य भी है। स्वाती नक्षत्र में वरसे जल-बिन्दुओं के प्रविष्ट होने से निर्मित मोतियों की आभा और आकृति सर्वोत्तम होती होगी यह निर्विवाद है।

अब आप यह ध्यान में लाने का यत्न कीजिये कि मोती कैसा होता है। मधुमक्खियों का छत्ता मधुकोष तो आपने देखा होगा; मधुछत्ता छः भुजाओं वाले मधु से भरे कोषों अथवा थैलियों का एक जाल होता है; सच्चे मोती का भी एक ढांचा होता है—मोती बहुत ही महीन, समान्तर पंक्तियों में क्रम से स्थापित, परतों का वना एक गोला होता है; इसकी प्रत्येक परत में अनेक थैलियों की एक सुकुमार झिल्ली युक्त जाली होती है—इस जाली का ढांचा 'कोनचायोलिन'—(Conchiolin) नामक एक सींग-सरीखे पदार्थ का वना हुआ होता है। ढांचे के बीच का खाली स्थान 'ऐरेगोनाइट' (Aragonite) नाम के पदार्थ के छोटे-छोटे रवों से भर जाता है; 'ऐरेगोनाइट' कैल्सियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate—चूने का कार्बोनेट) का एक रूप है। सच्चे मोतियों का यह ढांचा इतना सूक्ष्म होता है कि शक्तिशाली सूक्ष्म दर्शक यंत्र से भी नहीं

दिखायी देता। ऐरेगोनाइट के ये कोष मोती की प्रत्येक परत पर लम्बरूप में सीधे, और नियमित रूप से लगे रहते हैं अर्थात् जिस दिशा में पहिये के नाभि चक्र से निकलते हुए आरे लगे हुए होते हैं—वैसे ही ये छोटे-छोटे रवे मोती के केन्द्र से बिखरे हुए रहते हैं।

यदि किसी ने सच्चा मोती न भी देखा हो तो सामान्य सीपियां तो देखी ही होंगी। यह सीपी घोंघे का घर, कहिये अथवा उसका रक्षक कवच, होता है। सीपी को भीतर से देखिये—यह इन्द्रधनुष के समान सतरंगी चमक देती है। यह सतरंगी चमक ही विशेष रूप से उत्कृष्ट होकर सीप में से मोती के चुरने का कारण बनती है। अभिप्राय यह है कि सीप का भीतरी अस्तर जिस पदार्थ का बना हुआ होता है, मोती की तहें भी उसी पदार्थ से बनती हैं। इसी पदार्थ का नाम 'नेकर' (Nacre) या 'मुक्ता-माता (Mother of Pearl) है। इस प्रकार सच्चा मोती चांदी सी चमकवाला, एक केन्द्र के चारों ओर (संकेन्द्रिक) समान्तर पर अवस्थित उक्त 'नेकर' की हजारों तहों का बना एक ठोस पदार्थ होता है। ये हजारों तहें कभी एक-साथ नहीं बनती; रुक-रुक कर जमती हैं; इस लिये इन पतली-पतली तहों के संगम स्थान से प्रकाश की गति रुकती है—उसकी गति में बाधा पड़ती है—इसका परिणाम यह है कि इस अपारदर्शी ठोस पदार्थ (सच्चे मोती) की इन सूक्ष्म परतों से टकराकर दर्शक की आंखों में आयी किरणें एक विशेष प्रकार की झिलमिल उत्पन्न कर देती हैं। मोती की यह विशेष चमक मौक्तिक आभा अथवा 'प्राच्य' (Orient) आभा कहलाती है। मोती की उत्कृष्टता इसी आभा पर निर्भर करती है।

विचित्र किन्तु सत्य—देखी आपने प्रकृति की विचित्रता और दुर्बोध्यता ! इसी को भगवान् की लीला भी कह सकते हैं। वैज्ञानिक बताते हैं कि ईंधन के काम में आने वाला कोयला अथवा कार्बन पदार्थ और पैंसिल वाला सीसा ही शुद्ध रूप कार्बन हीरा होता

है। ग्रौर ६० प्रतिशत चूने के कार्बोनेट का बना मोती, सेलखड़ी से, चाक से, मूँगे, संगमरमर तथा शंख से कितना भिन्न है। ये सभी पदार्थ एक ही जाति के है, फिर भी इनके सामान्य भौतिक, रासायनिक प्रकाशीय, ग्रौषधीय गुणों ग्रौर प्रभावों में महान् ग्रन्तर है। यह सारा ग्रन्तर इनकी संरचना, ग्राकृति एवं जन्म स्रोत की विभिन्नता से ही तो है।

संसार भर के साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद तथा ग्रथर्ववेद में मोती का 'कृशन' नाम ग्राया है। पिपरावा के स्तूप से प्राप्त शाक्यमुनि के ग्रवशेषों में मोतियों के दाने मिले हैं। संस्कृत साहित्य के साहित्यिक, ग्रायुर्वेदिक तथा ज्योतिष के ग्रन्थों में मुक्ता (मोती), मौक्तिक-हार, मुक्ता-जाल ग्रादि का विस्तृत विवरण मिलता है। रोम के निवासी मोतियों का विशेष ग्रादर करते थे—वहाँ विशेष पदाधिकारी व प्रतिष्ठित व्यक्तियों को मोती धारण करने का ग्रधिकार प्राप्त था। प्लिनी के लेखानुसार मोती संसार का सबसे ग्रधिक मूल्यवान् पण्य पदार्थ था; ग्रौर भारतीय, हीरे के बाद मोती को ही सब से ग्रधिक मूल्यवान् समझते थे।

सीप का मोती—सच्चा मोती तो ग्राजकल ? ज्ञानिकों की दृष्टि में भी वही होता है जो घोंघे के पेट में की झिल्लीदार थैलीं (cyst) में बनता है। मुक्ता माता (Nacre नेकर) के बने इस मोती की थैली घोंघे के कठोर बाह्य ग्रावरण (shell) से चिपकी नहीं रहती इसलिये यह निर्बाध रूप से थैली में लुढकता-पुढकता पूरा गोल हो जाता है ग्रथवा नाशपाती के ग्राकार का बन जाता है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि कभी-कभी घोंघे के भीतर घुसने वाला विजातीय पदार्थ, रेत का कण ग्रथवा कीट ग्रादि, घोंघे के ऊपर वाले सख्त ग्रावरण (Shell) तथा उसकी भीतरी त्वचा ग्रथवा ग्रावरण (Mantle) के मध्य रह जाता है—उसके शरीर के

नरम गुदगुदे उदर भाग में नहीं पहुँच पाता। इस अवस्था में भी मोती बनता है परन्तु वह सीप से चिपका रहने के कारण निर्बाधगति से लुढक-पुढ़क नहीं पाता और पूरा गोल नहीं बन पाता—ऐसा मोती चपटा और बेडौल रह जाता है। इन्हें अंग्रेजी में 'बैरौक' (Baroque) अथवा 'छाला' (Bltister) मोती भी कहते हैं।

ध्यान रखिए—खाने योग्य घोंघे के पेट में से भी एक सख्त गोली-सा पदार्थ मिलता है—यह प्रायः काला और चमक-रहित होता है। यह मोती नहीं है। फिर सच्चा मोती तो प्रायः खारे समुद्रजल की सीपों से ही मिलता है; नदी, झील आदि के मीठे जल की सीपी के मध्य भाग से मिलने वाला मोती सच्चा मोती नहीं होता; उसमें मुक्ता-माता अथवा मौक्तिक पदार्थ (Nacre नेकर) ही नहीं होता। शंखों से मिलने वाले मोती भी ऐसे ही होते हैं। इनमें मुक्तामाता की एक दूसरे से मिली संकेन्द्रिक तहें ही नहीं होती; इसलिये इनमें मौक्तिक आभा का भी अभाव रहता है।

परन्तु कभी-कभी शंखों में निर्मित मोती गुलाबी रंग के और बड़े सुन्दर निकलते हैं—वे पर्याप्त मूल्य के होते हैं इनकी सतह पर से आग की-सी लौ उठती दिखायी देती है (रिचार्ड टी. लिड्डिकोट, कनिष्ठ)। सन् १८५७ में पेटसन स्थान के समीप से लगभग ९३ ग्राम का एक ऐसा ही सुन्दर मोती मिला था और उसका नाम 'क्वीन'—'मुक्तारानी' रखा गया था।

श्रेष्ठ मोती के गुण—आधुनिक वैज्ञानिक सच्चे मोती के दो गुण गिनते हैं—**पहला** इसकी विशेष चमक अथवा विशेष उज्ज्वल, मौक्तिक अथवा प्राच्य (orient) आभा और **दूसरा** इसके ऊपरी तल पर सुकुमार (मनोरम) सतरंगी (इन्द्रधनुषी) अभिनय।

भारतीय साहित्य में उत्तम मोती वह बताया है कि जिसको देखते ही मन प्रसन्न हो उठे (ह्लादि), जिसका रंग श्वेत हो, जो हल्का

हो जिसका गुरुत्व अधिक न हो; चिकना हो; चन्द्रमा की किरण के समान निर्मल हो; बड़ा हो; जल के तुल्य परछाईं उत्पन्न करने वाला और गोल (सुडौल) हो। श्रेष्ठ मोती के ये नौ गुण हैं (आयुर्वेद प्रकाश' अ० ५ श्लोक ६४)

एक अन्य प्राचीनग्रन्थमें उत्तम मोतीके निम्न गुण लिखे हैं:—

सुतारं च सुवृत्तं च, स्वच्छं च, निर्मलं तथा।
घनं, स्निग्धं सुच्छायं तथा (अ) स्फुटितमेव च ॥

इनको खूब मन में बैठा लीजिये—इस श्लोक के अनुसार श्रेष्ठ मोती तारे की-सी दीप्ति बिखेरता है (सुतारम्); वह पूरा-पूरा गोल होता है (सुवृत्तम्); स्वच्छ, अत्यन्त शुचि और मल-रहित होता है, ठोस होता है; चिकना होता है; उसमें छाया (परछाईं) पड़ती है और अस्फुटित अर्थात् कहीं भी चोट खाया नहीं होता है, उस पर किसी प्रकार की रेखायें नहीं होतीं। 'छायास्तु त्रिविधाः स्मृताः मधु-सिता-श्रीखण्ड-खण्डश्रियः— आयुर्वेदप्रकाशकार का कहना है कि श्रेष्ठ मोती में झांईं तीन प्रकार की, शहद, मिश्री तथा चन्दन के टुकड़े सरीखी, होती हैं।

मोती के दोष—मोतियों के अनेक प्रकार के दोष गिनाये गये हैं—इनमें से कुछ को 'बड़ा' और कुछ को 'छोटा' दोष भी कहा गया है। आजकल के जौहरियों के अनुसार इन दोषों की गिनती इस प्रकार है :—

(१) ऊपरी तल पर दरार अर्थात् **गरज** होना अथ ा मोती का फटा हुआ होना।

(२) सतह पर बारीक रेखाओं अथवा **लहरों** का होना।

(३) मोती के चारों ओर वलयाकार रेखा का होना—ऐसा प्रतीत होना कि दो टुकड़े-जुड़े हुए हों; अर्थात् **गिडली**।

(४) मोती का **मस्से** जैसा होना।

(५) मोती का **रूखा** अर्थात् चमकरहित होना ।

(६) चोभा (चेचक के दाग के समान);

(७) छाले जैसा; और

(८) धब्बा होना ।

(९) मोती **मटिया** हो अर्थात् उसके भीतर मिट्टी हो ।

(१०) **म्यानी** अथवा **मगज** मोती होना । ऐसे मोतियों का मध्य भाग काठ के समान और ऊपरी सतह झिल्ली के समान झीनी होती है । यह मोती सरलता से बिंध जाते हैं—इन पर परतें कम होती हैं—इस कारण झीनी झिल्ली पर श्याम (काली) आभा होती है । इनमें कैल्शियम पदार्थ, मुक्तामाता पदार्थ, नहीं होता ।

सीपी को छोड़ कर अन्य पदार्थों में उत्पन्न मोती—प्राचीन शास्त्रों के अनुसार मोती सीपी के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों से भी मिलता है; इनके नाम हैं—१ हाथी का गण्डस्थल, २ शंख, ३ मछली, ४ सूअर, ५ बाँस, ६ सर्प का मस्तिष्क, और ७ बादल । गज आदि से उत्पन्न मोतियों के लक्षण इन प्राचीन शास्त्रों में बताये हैं—परन्तु साथ ही यह भी कह दिया है कि ये मनुष्यों को कभी प्राप्त नहीं होते । मेघ से उत्पन्न मोती को तो देवता लोग आकाश में ही पकड़ लेते हैं । शास्त्रों में इनको इतना पवित्र माना गया है कि ये बींधने के अयोग्य' माने गये हैं । आजकल केवल सीपी से निकले मोतियों का ही प्रचलन है और उनके गुण हम ऊपर लिख आये हैं । हां, शंख मोती को गरुड पुराण में चन्द्रमा के समान कांतिवाला, गोल और चमकीला बताया है । अलाउद्दीन के कोषगाराध्यक्ष मन्त्री ठक्कुर फेरू द्वारा रचित 'रत्न परीक्षा' के अनुसार यह सफेद, हल्का और अरुण होता है । 'आरोग्यप्रकाश' में इसको शुक्र तारे के समान काँतिवाला बताया है । 'चाणक्य' ने भी अर्थशास्त्र में शुक्ति के साथ शंख को मोती की योनि बताया है—मोती की शेष योनियों को उसने

महत्त्व नहीं दिया है। आजकल के वैज्ञानिक भी शंख-मोतीका अस्तित्व मानते हैं। वे कहते हैं कि 'शंख के भीतर हलके नारंगी-लाल अथवा गुलाबी रंग के ठोस पदार्थ बन जाते हैं; यद्यपि वे मुक्ता-माता अथवा मुक्ता बनने वाले पदार्थ से रहित होते हैं। इनका विशेष लक्षण यह है कि इनके तल पर से प्रतिक्षिप्त होकर प्रकाश की किरणें एक विशेष प्रकार के नियमितन मूने-से बनाती हुई आती दिखायी देती हैं।

शुक्तिमुक्ता के आकर (कोष)—'आयुर्वेद प्रकाश' (पंचम अध्याय में लिखा है कि इन्द्र ने अपने वज्र से बल नाम के असुर को मारा था। उस समय बल के दान्तों के टुकड़े जहां-तहां खारे समुद्र में गिरे थे; जहां-जहां ये टुकड़े गिरे वे ही मोतियों के आकर या खजाने बन गये। इन स्थानों के नाम भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न प्रकार से बताये गये हैं और उन स्थानों की शुक्तियों से प्रायः मिलने वाले मोतियों के परिचायक लक्षण भी बताये गये हैं। मोतियों के विशेषज्ञ मोती देखकर ही उसके आकर का नाम, जिस देश के समुद्र से वह मिलता है उस देश का नाम, बता सकते है। प्राचीन तथा आधुनिक जानकारी का सारांश इस प्रकार है :—

१ पारशव (फारस की खाड़ी में उत्पन्न मोती) को वराह-मिहिर ने अत्यन्त महान् गुणों वाला, चमकीला और भारी बताया है। आधुनिक विश्वकोशों के अनुसार फारस की खाड़ी में पायी जाने वाली 'मोहर' (Mohar) नाम की सीप से जो मोती मिलते हैं, वे सर्वोत्कृष्ट होते हैं। 'बसरा का मोती' भी इसी खाड़ी का मोती है—यह सब मोतियों से अधिक टिकाऊ माना जाता है; इसकी चमक व चमड़ी अच्छी होती है (राजरूप टांक जौहरी)। आयुर्वेद प्रकाश, में इसी समुद्र के सिलसिले में आरवाट (करांची), बर्बर

(अरब स्थान) और पैलेस्टाइन के किनारे के आदाय आकरों का भी उल्लेख किया है।

२—**सिंहल अथवा लंका** (सीलोन) देश के आकरों में मिलने वाले मोती, वराहमिहिर के अनुसार, अनेक आकृतियों के चिकने, हंस के समान श्वेत और स्थूल होते हैं। परन्तु वर्तमान आंकड़ों के अनुसार लंकातट का महत्त्व, मोतियों की दृष्टि से, उतना नहीं रहा है। यहां की मनारखाड़ी का मोती सदा छोटा ही मिला है।

३—लंका-स्थित समुद्र के सिलसिले में ही **बंगाल** की खाड़ी से मिलनेवाला मोती गुलाबी रंग का होता है। बसरे के मोती के मुकाबले में यह अधिक नरम होता है। पहनने पर पसीने से सफ़ेद हो जाता है। रंग में यह एकसार नहीं होता। इसको औषधियों से सफ़ेद करते हैं, और इस कारण इसमें रूखापन आ जाता है तथा इसकी आयु घट जाती है।

आस्ट्रेलिया के मोती की चमक चाँदी की चमक-सी श्वेत होती है। मोती की यह चमक अमरीका तथा इंग्लैंड में तो कम, परन्तु यूरोप के दूसरे देशों में अधिक पसन्द की जाती है।

प्रशान्त महासागर के मोती चमकदार रंगों के लिये प्रसिद्ध हैं।

वेनेज्युएला के मोती प्राय: काले रंग के होते हैं। यहां के काले मोतियों में हरे रंग की आभा बहुमूल्य है; ऐसे मोती बहुत ही कम मात्रा में मिलते हैं।

भौतिक गुण—मोतियों का आपेक्षिक घनत्व २.६५ से लेकर २.८९ तक होता है। अधिक आपेक्षिक घनत्व गुलाबी मोतियों का होता है। मोतियों की कठोरता ३.५—४ है।

सावधान—मोतियों की सम्भाल में बड़ा सतर्क रहना चाहिये। क्योंकि एक तो ये अन्य रत्नों की अपेक्षा मोती मृदु होते हैं अत: इन पर खरौंच सहज में ही पड़ सकती है; दूसरे इन पर अम्ल पदार्थों,

(खट्टे) पदार्थों, त्वचा के पसीने आदि, से रासायनिक क्रिया शीघ्र होती है। हां, अम्लों का असर मुक्ता माता के कार्बनिक पदार्थ तक ही सीमित रहता है।

वैसे मोती की आब बनाये रखने के लिये करना यह चाहिये कि माला आदि को उतार कर मलमल के नरम कपड़े से साफ करके मग्नीशिया के साथ डिब्बी में रख दिया जाय **परन्तु** उन्हें रुई में नहीं रखना चाहिये; रूईकी गर्मी से मोती में लहर पड़ जाती है। मोती को सीलन भी नहीं पहुँचने देनी चाहिये।

मोतियों को दूसरे रत्नों की भांति काटा या चमकाया नहीं जाता। हां, बहुमूल्य मोतियों की कभी-कभी उनकी फीकी आभा वाली त्वचा को हटा कर उसकी चमकीली परत को खोलने की प्रक्रिया की जाती है; परन्तु यह एक नाजुक काम है।

मोतियों को बींधना व देखभाल—सीप से निकालने के बाद मोती बींधे जाते हैं। इन्हें लकड़ी के दो टुकड़ों में जकड़ कर फौलाद के बारीक तार से बींधा जाता है। यह हस्तकला भारत में बड़ी सावधानता से की जाती है। यह एक पृथक् विषय है।

जब मोती देर तक पहने जाते हैं तो धूल, पानी और पसीने के प्रभाव से उनकी आभा जाती रहती है।

प्राचीन काल में इसको पुनः चमकाने की अनेक अद्भुत विधियां प्रचलित थीं। कहते हैं कि मैले मोती को कबूतर को खिला दिया जाय और उसके पेट में २० घंटे रहने दिया जाय और फिर निकाल लिया जाय तो उसकी चमक फिर आ जाती है परन्तु इस प्रकार करने से यह भार में कम हो जायेगा और पतला पड़ जायेगा।

दूसरी विधि यह बतायी गयी है कि चावल और पानी एक बर्तन में डालकर नीचे से गरम करें। जब पानी कुनकुना हो जाय तो आग पर से उतार कर मोती को इस मांड के साथ कुछ समय तक धोने से मोती साफ़ हो जायेगा।

कुछ लोगों का विचार है कि केवल अच्छे चावलों से मलकर तरंज के जुशांदे से धोने से ही मोती साफ़ हो जाता है।

आजकल के कुछ अनुभवी जौहरी मोती साफ़ करने की सर्वोत्तम विधि यह बतलाते हैं कि या तो मोती को रीठे के पानी से धोया जाय अथवा मूली में गढ़ा बनाकर उसमें शक्कर अथवा बूरे के साथ मोती को भर दिया जाय। इस क्रिया से मोती साफ़ तो हो ही जाता है—खराब नहीं होता।

आजकल की वैज्ञानिक विधि में हाइड्रोजन परऑक्साइड और ईथर में डालकर पुराना मोती साफ़ किया जाता है—परन्तु इस विधि से साफ़ करते हुए बार-बार दवा से निकाल कर मोती को देखना पड़ता है; क्योंकि अधिक देर हो जाने पर मोती के रूखा हो जाने का डर रहता है।

बुरादा एक शानदार 'फेस पाउडर'—क्या आप जानते हैं कि मोतिय का बुरादा शारीरिक सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए प्रयोग में आने योग्य एक उत्कृष्ट 'पाउडर' है। इसका इतिहास भी बड़ा अद्‌भुत है। कोई फ्रांसीसी यात्री एकबार लंका में मलयाली लड़कियों के चेहरे देख कर अचम्भा करने लगा। रंग से कृष्णवर्ण होते हुए भी इतनी चमकदमक कैसे? पता लगा कि वे लड़कियाँ मोतियों की छांट करती हैं। बिन्धे मोतियों का बुरादा उनके शरीरों की कान्ति को उद्दीपक था। तब से फ्रांस में मोतियों का बुरादा सौन्दर्यवर्धक पाउडर के रूप में बिकने लगा।

ऐतिहासिक मोती—(१) संसार का सबसे बड़ा मोती हैनरी फिलिप होप के संग्राहालय में है। यह २ इंच लम्बा, ३.२५ इञ्चा चौड़ा है; इसका घेरा ४.२५ इञ्च है। इसके पौन भाग का रंग सफेद तथा शेष का कांसे के समान है। मूल्य १२००० पौंड तथा भार ४५४ कैरट है।

(२) ३०० कैरट का एक मोती आस्ट्रेलिया के शाही ताज में है।

(३) सन् १९०१ में फारस की खाड़ी से १७८ ग्रेन का एक मोती निकला था।

(४) एक सुन्दर भारतीय गोलाकार मोती २८ कैरट का है जो रूस की राजधानी मास्को के जोसिया-संग्रहालय में है।

(५) 'महान् दक्षिणी ब्राह्मक' में नौ बड़े मोती आपस में स्वस्तिक के आकार में जुड़े हुए हैं। यह ब्राह्मक सन् १८८६ में आस्ट्रेलिया के किनारे जाल में आयी एक सीप में से निकला था।

संवर्धित मोती (Cultured Pearls)—अति प्राचीन काल में चीन में यह रिवाज था कि वे महात्मा बुद्ध की टीन की छोटी-छोटी मूर्तियों पर मुक्ताभ-पदार्थ (Nacreous substance) का लेप कर लिया करते थे परन्तु जापान ने इस दिशा में प्रगति की और सन् १९२१ में पूरा संवर्धित मोती बाजार में बहुत मात्रा में बिकने लगा। संक्षेप में यहां इतना ही बताना उपयुक्त होगा कि आम तौर पर घोंघे के पांव में छेद करके मुक्तापदार्थ तथा घोंघे के आवरण के तन्तु से निर्मित एक मनका घोंघे के भीतर प्रविष्ट करा दिया जाता है। अब यह घोंघा, इस विजातीय पदार्थ पर भी मुक्ता-पदार्थ का आवरण वैसे ही चढाता चला जाता है जैसे कि वह प्राकृतिक रूप से अपने भीतर प्रविष्ट विजातीय पदार्थ पर चढ़ाता है। यह प्राय: ३·५० वर्ष में १ मिलीमीटर अधिक बड़ा हो पाता है। आस्ट्रेलिया तथा दूसरे गरम प्रदेशों के खारी समुद्रों में अधिक बड़े संवर्धित मोती बनते हैं। आस्ट्रेलिया तथा अन्य स्थानों में १० मिली मीटर तक के व्यास के मोती बन पाते हैं।

संवर्धित मोती को निकालकर देखते हैं कि उसमें कितने दोष रह गये हैं। भूरापन प्राय: सभी संवर्धित मोतियों मे पाया जाता

है; इसलिये इनका रंग उड़ाया जाता है। जो हलके रंग के होते हैं उन्हें गहरा रंग दिया जाता है। इनमें निम्नलिखित दोष पाये जा सकते हैं—धब्बे, गड्ढे, रेखाएँ अथवा उभाड़, दरार (गरज), चुराचुरापन मुक्तामाताविहीन क्षेत्र का होना, बेरंग स्थान, एक ओर से निष्प्रभ होना आदि। संवर्धित मोती का मूल्य, उसकी गोलाई, दोषरहित होना, रंग, मुक्ता-कांति की मात्रा और उसकी छोटाई-बड़ाई पर निर्भर रहता है।

संवर्धित मोतियों की माँग सबसे अधिक अमरीका, कैनेडा और उत्तरी युरोप के धनी लोगों की ओर से रहती है। ये लोग श्वेत तथा श्वेत के सदृश मोतियों के ग्राहक रहते हैं। क्रीम रंग से लेकर पीले रंग तक के मोतियों पर मुक्ता-पदार्थ का लेप कुछ अधिक घना होता है। इन देशों की स्त्रियाँ वस्तुत: क्रीम रंग के मोतियों को अधिक पसन्द करती हैं। क्योंकि लेप कुछ अधिक घना होने के कारण इनका बहुत-सी विविध प्रकार की त्वचाओं के रंगों के साथ मेल बैठ जाता है। ऐसे मोती बहुत सी महिलाओं को जंच जाते हैं और इनका मोल भी कम होता है।

नकली मोती (Imitation Pearls)—असली मोती प्राकृतिक मोती हैं तथा संवर्धित मोती, मोती बनने की प्राकृतिक प्रक्रिया से उपजाये जाते हैं। परन्तु तीसरे प्रकार के मोती भी होते हैं जो सर्वथा बनावटी अथवा असली की केवल नकल मात्र ही होते हैं।

नकली मोतियों का उल्लेख भी शुक्रनीति (अ: ४) तथा गरुड़ पुराण तक में मिलता है और असली-नकली की परीक्षा करने का वर्णन किया है।

ये नकली मोती या तो मोम भरे कांच के होते हैं, या ठोस कांच के अथवा मुक्ता माता से निर्मित होते है। मछली के ऊपरी

कठोर आवरण से तैयार किये हुए द्रव पदार्थ में डुबोकर उक्त नकलियों को असली मोती की छवि दी जाती है ।

पहचान—शुक्रनीति तथा गरुड़ पुराण (अ: ६९) में बताया है कि नमक मिले तैलयुक्त गरम जल में मोतियों को रातभर भीगता रहने दें । फिर प्रातःकाल सूखे कपड़े में लपेट कर धानों से मलें । इस क्रिया से जिस मोती का रंग न बदले वह **असली** होगा ।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार—मोती के छेद का ध्यान से निरीक्षण करना चाहिये । (१) मोमभरे अथवा मोमिया मोती के छेद के किनारों पर काच-सरीखी आभा दिखायी देगी । (२) प्राकृतिक अथवा संवर्धित मोतियों के छेदों के किनारों की सूरत की अपेक्षा नक़ली मोतियों के इन किनारों की सूरत अधिक रूखी और ऊँचीनीची दिखायी देगी । (३) परन्तु किनारों को दान्तों से छुआने पर मोमिया अधिक चिकना तथा असली अधिक किरकिरा लगेगा । (४) छेद में सूई डाल कर देखने पर नरम मोती का संस्पर्श अनुभव होगा । (५) मोमिया मोती में पिन का सिरा गड़ाकर देखिये—नकली के तल पर अस्थायी गढ़ा पड़ जायेगा—दूसरे किसी प्रकार के मोती में ऐसा नहीं होगा । (६) लैंस से बड़ा करके देखने पर नकली का तल बेपरतों का समतल दिखायी देगा (७) नकली पर हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड का कोई असर नहीं होता—जबकि प्राकृतिक व संवर्धित पर से, ऐसा करने पर झाग उठने लगते हैं । (८) असली का छेद आरम्भ से अन्त तक एक सा होगा ; संवर्धित का बीच में अधिक चौड़ा होगा ।

असली और संवर्धित में अन्तर—असली और संवर्धित मोतियों के बनने की प्रक्रिया एकसी होती है; दोनों पर मोती-उत्पादक ही मुक्ता-पदार्थ का लेप चढ़ाता है । इसलिये घोंघा बिना वींधे इनमें सुनिश्चित पहचान करना कठिन होता है । फिर

भी जौहरी लोग केवल दृष्टिमात्र से इन में पहचान कर लेने का दावा करते हैं। इसमें उनकी भूल रह जाना सम्भावित रहता है और इस प्रकार कभी-कभी मौक्तिक हार के मूल्यांकन में हजारों रुपयों का अन्तर रह जाता है।

इन दोनों प्रकार के मोतियों में पहचान करने के लिये अनेक यंत्र बनाये गये हैं—जिनसे सुनिश्चित पहचान हो जाती है। परन्तु **आपेक्षिक घनत्व** के आधार पर किये गये प्रयोग से भी पर्याप्त सही पहचान हो सकती है। इस प्रयोग के लिये शुद्ध '**ब्रोमोफार्म**' में अल्कोहल आदि हलके पदार्थ मिलाकर इतना हल्का कर लेते हैं कि उसमें 'आइस्लैंड स्पार' नाम का पदार्थ लटकता रहे—न डूबे न ऊपर आकर तैरे। इस द्रव में असली मोती प्रायः तैरते रहेंगे और संवर्धित मोती प्रायः डूब जायेंगे। २.७१३ घनत्व वाले प्राकृतिक खारे जल के मोतियों की ८० प्रतिशत संख्या इस द्रव में तैरेगी और संवर्धित मोतियों की ९० प्रतिशत संख्या डूब जायेगी।

हीमेटाइट के चमकदार दाने मोती के रूप में बिकते हैं—परन्तु ये मोती नहीं होते; इनकी प्रबल धात्वीय चमक इनकी पोल खोल देती है; फिर इसका आपेक्षिक घनत्व बहुत अधिक अर्थात् ५.० होता है।

मोती का प्रयोग—(क) चिकित्सा में—रासायनिक दृष्टि से मोती में कैल्शियम, कार्बन और आक्सिजन ये तीन ही तत्त्व होते हैं; परन्तु इसकी रचना की प्रक्रिया, विशेषतः घोंघे के पेट में ऐन्द्रियिक पदार्थों का संयोग, इसको चिकित्सा में विशेष उपयोगी बना देता है। अति प्राचीन काल से वैद्य तथा हकीम भस्म एवं पिष्टिकाओं के रूप में नाना रोगों पर इसका प्रयोग करते आये हैं।

परन्तु सावधान! —आयुर्वेद ने स्पष्ट ही बता दिया है कि 'अशुद्धानि न कुर्वन्ति गुणान्, रोगांस्तु तन्वते।'—आयुर्वेद में बतायी

गयी विधियों से शुद्ध किये बिना रत्न गुण न करके, रोग बढ़ा देते हैं। चिकित्सा में मोतियों का प्रयोग निम्नलिखित रीति से किया जाता है:—

(१) मोती में ९० प्रतिशत चूना होता है। अतः कैल्सियम की कमी के कारण उत्पन्न रोगों में यह लाभदायक होता है।

(२) यह त्रिदोषनाशक है।

(३) **नेत्ररोगों में** मोती के चूर्ण का अंजन लगाइये।

(४) **स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिये** प्रयोग में लाया जाता है। उन्माद, अपस्मार, कम्पगत आदि **वायु विकारों को** नष्ट करता है।

(५) **पाचन-शक्ति को तेज करता है;** खूनी बवासीर व संग्रहणी में लाभदायक है।

(६) **क्षय में** ज्वर को कम करता है।

(७) शुक्रमेह और श्वेत एवं रक्त प्रदर में देते हैं।

(८) **मूत्रकृच्छ अथवा पेशाब की जलन में**—केवड़े के जल के साथ लाभ देता है।

(९) अत्यन्त थकावट व निर्बलता में दिया जाता है।

(१०) **हृदय को** बल देता है; मियादी बुखार में मोती का जल, शक्ति स्थापित रखता है।

इसका प्रयोग **पिष्टी** और **भस्म** के रूप में किया जाता है। मुक्तापंचामृत, मुक्तादिचूर्ण और वसन्तकुसुमाकर इस से निर्मित प्रसिद्ध आयुर्वेद औषधियां हैं।

'रत्नचिकित्सा' पद्धति के अनुसार 'मोती-गोलियां' नारंगी रंग का प्रभाव रखती हैं। यह जिन रोगों में उपयोगी है, उनमें से कुछ इसप्रकार हैं—मस्तिष्क ज्वर, कैंसर, पित्तपथरी, मूत्रग्रन्थिप्रदाह, मानसिक दुर्बलता, क्षयरोग, तथा बलगम के साथ खांसी।

दैवी शक्ति- १. ज्योतिष की दृष्टि से मोती **चन्द्रमा** का रत्न है।

२. जिस व्यक्ति के जन्मसमय 'चन्द्र' निर्बल होता है, ज्योतिषी उसको मोती पहनने का निर्देश देते हैं।

३. यह रत्न जलीय है; स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी बताया गया है। कुछ विद्वान् तो यहां तक कहते हैं कि इसको केवल स्त्रियां ही धारण करें। इसको धारण करने वाली महिलाओं में लाज, लावण्य आदि स्त्रियोचित गुणों का विकास होता है। स्त्रियां मोतियों को चूड़ियों और बुन्दों में जड़ कर अथवा हार रूप में गूँथ कर पहनती हैं। चन्द्र कर्क राशि का स्वामी है; सूर्य कर्क राशि में १५ जुलाई से १४ अगस्त तक (पाश्चात्य गणना के अनुसार २२ जून से २२ जुलाई तक) रहता है। इस अवधि में उत्पन्न व्यक्तियों पर चन्द्र ग्रह का प्रभाव रहता है। अंक ज्योतिषियों के अनुसार इस अवधि में उत्पन्न व्यक्तियों का मूल अंक २ माना गया है। जिन व्यक्तियों को अपने जन्म समय का ठीक ज्ञान न हो उनको अंक-विज्ञान की विधि से नाम के अक्षरों के अंक गिनकर अपना मूल अंक निकाल लेना चाहिए। दो मूल अंक वालों को चन्द्र ग्रह के अशुभ प्रभाव से बचने के लिये 'मोती' धारण करना चाहिए। उनको मोती १५ जुलाई से १४ अगस्त तक के महीने में पड़ी २, ११, २० और २९ तारीखों में के सोमवार को शुक्लपक्ष में धारण करना चाहिए। कृष्णपक्ष में मोती का धारण निषिद्ध है।

धारण विधि : मोती धारण करने का मंत्र—इस प्रकार है :—

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते जानराज्यायेंद्रियस्येंद्रियाय। इममुष्यै पुत्रममुष्यैपुत्र विश एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा।

चांदी में जड़कर पहनने से मोती विशेष लाभ करता है। जिन व्यक्तियों का जन्म मेष तथा वृश्चिक के सूर्य के समय (१५ अप्रैल से १४ मई तक अथवा १५ नवम्बर से १४ दिसम्बर की अवधि में) होता है उन्हें भी मोती लाभ पहुँचाता है।

कितना भारी—२,४,६, अथवा ११ रत्ती का मोती पहनना—चाहिये; ७ या ८ रत्ती का कभी न पहने।

धारण करने के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२ से ६८ तक भी देखिये।

बदल—जो व्यक्ति मंहगा होने के कारण मोती नहीं खरीद सकें उनके लिये स्थानापन्न उपरत्न **चन्द्रमणि** बताया गया है। भस्म बनाने के लिये स्थानापन्न सीपी भी बतायी गयी है।

भौमरत्न—मूंगा—प्रवाल-विद्रुम

: ३ :

समुद्री जीव का घर अथवा कंकाल; मूंगे के आभूषण बनाने में इटली विशेष प्रसिद्ध; सबसे सस्ता पर अधिक गुणी; सारा आकर्षण इसका रंग।

विविध नाम : संस्कृत—प्रवाल, विद्रुम, लतामणि, अंगारक-मणि, अम्भोधि-पल्लव, भौमरत्नक, रक्तांग आदि। **हिन्दी-पंजाबी** मूँगा। **उर्दू-फ़ारसी**-मिरजान और **अंग्रेजी**–Coral (कोरल)।

मूँगा क्या है ?—मोती की भांति मूँगा भी खनिज रत्न नहीं है; इसीलिये खनिजविज्ञान वेत्ता इस पर ध्यान नहीं देते। मोती के समान यह भी समुद्र से मिलता है और उसी के समान इसका घटक पदार्थ भी केलशियम कार्बोनेट ही है। परन्तु इन दो विशेषताओं के अतिरिक्त इनमें कोई समानता नहीं है। मोती अपनी आकर्षक मुक्ता-आभा के कारण रत्नों में गिना जाता है। मूँगा भी अपने आकर्षक रंग और चमक के कारण ही रत्नों में गिना गया है।

कीड़े का घर मूँगा—संस्कृत साहित्य में मूँगे के जो अनेक नाम हैं, उनमें एक नाम 'लतामणि' भी है; यह नाम इस बात का सूचक है कि प्राचीनों का विश्वास था कि यह एक वानस्पतिक

पदार्थ है : देखने में इस का रूप बेलों की शाखाओं-सा होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार मूँगा पोलि पाई (Polipi) किस्म के 'आइसिस नोबाइल्स' (Isis Nobiles) नाम के लसदार समुद्री जन्तुओं की उपज है। ये जन्तु बिन-पत्तों और टहनियों वाले के वृक्ष के रूप में इसका निर्माण करते हैं। यह वृक्ष कभी-कभी तो मनुष्य के शरीर के बराबर भी मोटा होता है, परन्तु सामान्यतया एक फुट ऊँचा और एक इन्च मोटा होता है। इसका अत्यन्त सुन्दर लाल रंग होता है और इसको खूब चमकाया जा सकता है। इसमें शहद के छत्तों के-से खाने बने होते हैं—इन खानों में ये जन्तु रहते है। तने के ऊपर एक कोमल छिलका होता है और उसके ऊपर जाली-जैसी झिल्ली चढ़ी रहती है। अपने इन घरों मे आराम से बैठे इन कीड़ों को सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखने पर पता लगता है कि इके मुँह पर नोकीली मूँछें होती हैं। इनमें स्पर्श शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है—इसके द्वारा ही ये अपना भोजन पकड़ते हैं। इनका भोजन, छोटे-छोटे समुद्री कीड़े अथवा वनस्पतियों के छोटे-छोटे कण, होता है।

ये प्राणी समुद्र की छः-सात सौ फुट गहरी तलहटी पर चट्टानों पर अपना लाल लतामय ढांचा बनाते हैं ; – अर्थात् यों कहिये कि वे मूँगे को अपने रहने के लिये बनाते हैं। मोती बनाने वाला सीपी-कीड़ा अपने भीतर मोती बनाता है, परन्तु मूँगा तो एक प्रकार से स्वयं कीड़े का घर ही होता है। मूँगा तभी बनता है जब कि सूर्य की गर्मी उस स्थान पर पहुँच जाये, जहां कि यह बनता है।

एक ग्रन्थकार ने मूँगे के विषय में लिखा है कि यह किसी कीड़े का शव है जो समुद्र तल में पड़ा-पड़ा कठिन हो जाता है। लाली भी इसमें धीरे-धीरे प्रौढ़ होने पर आती है।' लसदार समुद्री जीव

अपने स्राव द्वारा मूँगे का निर्माण करता है—यह बात तो सभी मानते हैं। स्राव द्वारा बना हुआ यह मूँगा उसका शरीर है अथवा उसके रहने का स्थान यहां केवल वर्णन करने की शैली में ही अन्तर प्रतीत होता है। अस्तु इस प्रवाल वृक्ष का नीचे का ठोस भाग 'प्रबाल मूल' तथा पतली शाखाएँ 'प्रबाल शाखाएँ' कहलाती हैं।

प्राप्ति स्थान—यों तो मूँगा प्राय: सभी समुद्रों में पाया जाता है परन्तु अच्छे, पहनने योग्य मूँगे भूमध्य सागर के तटवर्ती अल्जीरिया, ईरान की खाड़ी, हिन्दमहासागर आदि से निकलते हैं। इनमें से भूमध्य सागर के मार्सलीज, सर्डानिया, सिसली कोर्सिका आदि स्थानों पर इनके निकाले जाने की खूब चहल-पहल और उमंग रहती है। स्पेन के तट पर के मूँगे अधिक गहरे रंग के होते हैं। फ्रांसीसियों ने सन् १४५० ई० से मूँगा निकालने का धन्धा विशेष रूप से अपनाया हुआ है। बीच में अंग्रेज इस धन्धे में आये अवश्य। सन् १८३० से इटली के लोग इस धन्धे में प्रविष्ट हुए। अब येही लोग यह धंधा करते है। समुद्र से मूँगे निकालने का काम प्रतिवर्ष मार्च से अक्तूबर तक होता है।

वैज्ञानिकों का कथन हैं कि मूँगा बनाने वाला समुद्री जीव एक लसीला चिपचिपा पदार्थ होता है। उचित वातारण में यह समुद्री जल से कैल्सियम कार्बोनेट के कठोर एवं सख्त ढेर को निक्षिप्त कर देता है। मूँगा कुछ वर्षों में जाकर परिपक्व होता है—इसी लिये मूँगा निकालने वाले एक निश्चित पद्धति के अनुसार ही विभिन्न तटों पर से मूँगे निकालते हैं कि जिससे कच्चा मूँगा वे नहीं निकालते। मूँगा जितनी अधिक गहराई में से निकलेगा, उसका रंग उतनी ही कम गहरा होगा।

मूँगे को समुद्र से निकाल कर काटते हैं और इस प्रकार अभीष्ट आकृति का दाना बना लेते हैं। इससे माला के दाने, फूल, पत्ते

आदि बनाये जाते है। मूँगे के दानों में छेद लोहे के तार से किया जाता है। इटली में यह काम हाथ से होता था परन्तु अब जर्मनी के वैज्ञानिकों ने इस काम के लिये यंत्र भी बना लिया है। मूँगे को काटने-संवारने के कारखानें मार्सलीज और जेनेवा में थे। अब इटली का 'नेपल्स' ही इस काम के लिये एक मात्र स्थान है। नेपल्स में लगभग ४० कम्पनियां यही काम करती हैं। वहां इस धन्धे में कई हजार व्यक्ति लगे हुए हैं जिनमें अधिकांश स्त्रियां हैं,

मूँगे से सभी प्रकार के आभूषण, विशेषतया मालायें, हार तथा धार्मिक वस्तुएँ बनायी जाती हैं। यूरोप की अपेक्षा मूँगों की खपत पूर्वी देशों में अधिक है। स्पेन आदि के रोमन पादरियों में मालाओं के लिये इसकी अच्छी खपत होती है। भारत में इनकी मांग बहुत है—यहां नक्काशी किये हुए मूँगों का प्रचलन है।

ऐतिहासिक—मूँगों पर इतनी सुन्दर नक्काशी करने का चलन आज तो नहीं रहा है, परन्तु प्राचीन काल के कुछ नक्काशी किये मूँगे विद्यमान हैं। बर्लिन में सन् १८८० में लगी एक प्रदर्शिनी में मूँगे का एक हार, ६००० पौंड मूल्य का प्रदर्शित किया गया था। इटली के शाही परिवार के पास एक नक्काशी का काम की हुई मूठ विद्यमान है, इसका मूल्य ३६० पौंड है।

नीला मूँगा भी एक बार अफ्रीका के पश्चिमी तट से दूर समुद्र से निकला था—परन्तु फिर ऐसा मूँगा दिखायी नहीं दिया। कृत्रिम रंग दिये हुए मूँगे आज कल बाजार में पर्याप्त हैं, परन्तु स्थायी रूप से मूँगे को रंग देने वाला रंजक अभी तक ज्ञात नहीं हुआ, यही कारण है कि आधुनिक-काल के नये मूँगों के हारों का रंग प्रायः उड़ जाता है।

यहां से ये, भारत, चीन व जापान को भेजे जाते हैं। इस पर नक्काशी खूब अच्छी तरह हो सकती है ।

भौतिक गुण—जैसा कि पीछे बताया है मूँगा समुद्री रीढरहित क्रमियों की एक बस्ती के, शाखा-प्रशाखाओं से बने एक ढांचे के रूप में समुद्र से निकलता है। मूँगे अर्ध-पारदर्शक भी होते हैं और क्रमशः कम पारदर्शक होते-होते सर्वथा अपारदर्शक भी मिलते हैं। मूँगा श्वेत, गुलाबी, नारंगी, लाल और काला—इन रंगों में मिलता है। काला मूँगा शेष रंगों के मूँगों से इस बात में भिन्न होता है कि यह अधिकतर कैल्शियम कार्बोनेट का बना नहीं होता, बल्कि सींग-सरीखे पदार्थ का बना होता है। चूनेदार मूँगे के गुण चूर्णाश्म (Calcite) जैसे ही होते हैं। मूँगे का एक विशेष लक्षण यह है कि समुद्र में यह जिस चट्टान पर लगा होता है उसकी सतह पर यह सदा लम्बरूप खड़ा होता है। इसके तन्तु प्रत्येक शाखा के केन्द्र से उसकी लम्बाई से लम्बरूप सतह पर फैले हुए होते हैं। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर प्रत्येक शाखा, अपनी लम्बाई के समान्तर पर एक धारी-सरीखी दिखायी देती है। मूँगा टूटने के स्थान पर निस्तेज दिखायी देता है।

इनका आपेक्षिक घनत्व लगभग २·६५ होता है; कठोरता ३ ५ से ४ तक की कोटिकी होती है। वर्तनांक इसके १·४८६ तथा १·६५८ हैं; इसप्रकार दुहरा वर्तन बहुत अधिक होता है। काले मूँगे के वर्तनाँक १·५६ तथा १·५७ हैं और दुहरावर्तन लगभग ·०१ है; इसका आपेक्षिक घनत्व १·३७ तथा कठोरता की कोटि ३ है। मूँगे पर हाईड्रोक्लोरिक एसिड डालने से झाग उठते हैं; काले मूँगे पर इसका यह प्रभाव नहीं होता। काले मूँगे को यदि तपायी हुई तार से छुआ दिया जाये तो उससे ऐसी दुर्गन्ध उठती है जैसी कि बाल जलने से आती है।

उत्तम मूँगा—आयुर्वेद के अनुसार सात प्रकार की विशेषताओं वाला मूँगा शुभ-माना जाता है—(१) पके हुए बिम्बफल के समान,

(२) गोल (३) लम्बा (४) सीधा (५) चिकना (६) खांचा या गढ़ा या उभार आदि व्रणरहित (७) और मोटा। इसका रंग सिंदूर हिंगुल, अथवा शिगरफ़ से भी मिलता-जुलता होता है। मूँगे की बेल का वर्णन इन शब्दों में किया है :—

बालार्ककिरणारक्ता सागरसलिलोद्भवा यास्ति।
न त्यजति निजरुचिं निकषे घृष्टापि सा स्मृता जात्या।

प्रवाल की उत्तम (सुजाति) बेल वह है जो उदय होते हुए सूर्य की किरणों जैसी सर्वथा लाल हो, समुद्र के जल में उत्पन्न हुई हो, और कसौटी पर घिसने पर अपनी कांति को न छोड़े।

शुक्रनीति में बताया है कि मूँगा मंगल ग्रह का प्रिय और खून जैसे रंग का परन्तु कुछ-कुछ पीली आभा लिये हुए होता है।

मूँगा श्वेत रंग का आभा युक्त भी होता है—यह चूँकि देखने में सुन्दर होता है, इसलिये व्वहार में तो आता है परन्तु रंगीन मूँगे के मुकाबले में कम गुणकारी होता है। श्वेत रंग के मूँगे को बंगाल में बहुत पसन्द किया जाता है। वास्तविक बात तो यही है कि अन्य रत्नों से इतना असमान होते हुए भी इसका आकर्षण इस के सुन्दर रंग पर निर्भर है; इसी के कारण यह महान् अथवा बहुमूल्य रत्नों में गिना गया है।

मूँगे के दोष—'आयुर्वेदप्रकाश' के अनुसार, जिस मूँगे के शरीर में चूना व्याप्त हो, जो टेढा हो, पतला हो, खाँचों से युक्त हो, रूखा हो, काला हो, हलका और श्वेत हो उसको धारण न करे। इसके अतिरिक्त पाण्डुर और धूसर वर्ण के मूँगे भी निम्न कोटि के माने जाते हैं।

चिकित्सा-सम्बन्धी गुण—प्रवाल में ८३ प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनिट, ३.५ प्रतिशत मैग्नीशियम कार्बोनिट, और ४.५ प्रतिशत लोहा तथा अल्प प्रमाण में सिकता होते हैं। जैवपदार्थ ८ प्रतिशत होते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र के सिद्धान्तानुसार यह **गुण** में लघु एवं रूक्ष; **रस** की दृष्टि से, मधुर तथा कुछ-कुछ अम्ल; इस का **विपाक** मधुर; और इसका **वीर्य**, शीत है। 'रसरत्नसमुच्चयकार' ने भी प्रवाल को मधुर तथा अम्ल बताया है।

रोगों में प्रयोग—प्रवाल का चिकित्सा में प्रयोग वातपित्त तथा कफ--तीनों के, विशेषकर कफ और वायु के विकृत होने से उत्पन्न रोगों में किया जाता है।

नेत्ररोगों में इसका चूर्ण अंजन के रूप में लगाया जाता है। **मस्तिष्क** तथा **नाड़ी की दुर्बलता** को दूर करता है। पाचक, अम्ल-नाशक, ग्राही तथा दीपन है—अतः अम्लपित्त, उदर शूल, खूनी पेचिश और बवासीर तथा आन्तों के व्रण में प्रयुक्त होता है। **हृदय की दुर्बलता, रक्तविकार** और **रक्तपित्त** में देते हैं। श्वसन-संस्थान पर इसका विशेष प्रभाव होता है—**पुराने बिगड़े जुकाम, खांसी, दमा और यक्ष्मा में** देते हैं—क्योंकि यह कफघ्न है। वृष्य है—इसलिये **शुक्रमेह** में देते हैं। अत्यधिक पसीना और रात में पसीना आने को रोकता है। मूत्रल है; इसलिये **मूत्रकृच्छ** में प्रयुक्त होता है। '**प्रवाल पंचामृत**' इसका प्रसिद्ध प्रयोग है।

मूँगे को गुलाब जल में काजल की तरह पीसकर, छाया में सुखाकर मधु के साथ सेवन करने से शरीर पुष्ट होता है। पान के साथ खाने से कफ़ व खांसी में लाभ करता है। मलाई के साथ खाने से हृदय की धड़कन को दूर करता है।

रत्न चिकित्सा में प्रयोग—'रत्नचिकित्सा' के सिद्धान्त के अनुसार प्रवाल को त्रिकोण कांच (प्रिज्म) में से देखने पर पीला दिखायी देता है; अतः यह पीली विश्वकिरणों की खान है। श्री रालेंड हण्ट के अनुसार नीचे लिखे रोगों में पीली किरणों की आवश्यकता होती है—अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, मधुमेह, बवासीर,

खुजली, चर्मरोग, कुष्ठ और स्नायविक अवसाद। पीली किरणों से बहुत कठिन मानसिक अवसन्नता भी जाती रहती है।

दैवी शक्ति—ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जन्मपत्रिका में यदि मंगल क्रूर हो तो प्रवाल धारण करना उचित है। मूँगे की शाख को केवड़ा अथवा गुलाब जल में घिसकर गर्भिणी के पेट पर लेप करने से **गर्भपात** रुकता है। बालक के गले में पहिनाने से पेट का दर्द, **सूखा रोग** आदि दूर होते हैं। अच्छे घाट का चमकदार मूँगा पहिनने से मन प्रसन्न होता है। मृगी तथा हृदय रोग दूर होते हैं।

मंगल ग्रह के प्रभाव में उत्पन्न अर्थात् जब सूर्य मेष और वृश्चिक राशि में उदित रहता है उस समय—क्रमशः १५ अप्रैल से १४ मई तक और १५ नवम्बर से १४ दिसम्बर तक—उत्पन्न हुए व्यक्ति इस को धारण करते हैं। अंक ज्योतिष के अनुसार ९ अंक वाले व्यक्ति इसके धारण से लाभ उठा सकते हैं।

थोड़ी कीमत का यह रत्न अत्यधिक गुण रखता है; बहुत से लोग इसको सस्ता समझकर इसका मान नहीं करते।

परन्तु **याद रहे**—सदोष मूँगा धारण मत कीजिये; दुरंगा, अंग-भंग वाला, गड्ढेदार, मूँगा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार, सुखसम्पत्ति को नष्ट करता है; काले धब्बे वाला मृत्यु के समान दुःखदाता होता है; श्वेत छींटे वाला रोग बढ़ाता है; घुना हुआ मूँगा शरीर में दर्द और अधसीसी उत्पन्न कर देता है। चीर-चोट वाला, शस्त्रद्वारा चोट पहुँचने का कारण बन जाता है।

धारणविधि—जन्मपत्रिका में मंगल ग्रह ४,८, १२ स्थान पर हो तो ८ रत्ती का मूँगा सोने की अंगूठी में पहनना बताया है। चन्द्र-मंगल के योग में चांदी में मूँगा जड़वाना चाहिये—यह पाँच अथवा १४ रत्ती का कभी नहीं होना चाहिये।

अंकज्योतिष के अनुसार ९ अंक वाले व्यक्तियों को लाल, भूरा अथवा

चमकीला भूरा मूँगा पहनना चाहिये । ६, ११ अथवा १२ रत्ती का मूँगा चांदी में जड़वा कर तीसरी अंगुली में निम्नलिखित मंत्र के पाठ के साथ धारण करना चाहिये ।

ओम् । अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ।।

धारण करने के संबन्ध में इस पुस्तक के पृष्ठ ५२-६५ भी देखिये ।

उपरत्न—मंगल का उपरत्न **विद्रुममूल** अथवा **संगमूंगी** बताया है । मूँगे की जड़ से जो शाखायें निकलती हैं, वे 'संगमूँगी कहलाती हैं । यह तोल में हलकी होती है और इसमें भी मूँगे के सभी गुण पाये जाते हैं ।

नकली मूँगा—मूँगा एक सस्ता रत्न है, इसलिये नकली मूँगा प्रायः नहीं बनता । **काँच का** बना हुआ नकली मूँगा (१) असली मूँगे से भारी होता है; (२) इसको घिसने पर शीशे को रगड़ने की-सी आवाज़ साफ़-साफ़ सुनायी दे जाती है और (३) लैंस से देखने पर ढले हुए कांच के समान रवे साफ़-साफ़ दिखायी दे जाते हैं ।

हां, **शंखमोती** के बदले गुलाबी मूँगे को चलाने की कोशिश अवश्य की जाती है । परन्तु इन दोनों में अन्तर स्पष्ट है । शंखमोती का आपेक्षिक घनत्व २.८५ होता है, जबकि मूँगे का आ. घ. २.७० है । उन दोनों की सतहों की छवियाँ ही अलग-अलग होती हैं । मूँगे की सतह पर जहां-तहां गढे होते हैं । शंखमोती प्रायः रंगबिरंगा दिखायी देता है ।

सीपी अथवा कौड़ियों को घिस-घिसा कर प्रायः विविध आकृतियों के **नकली** श्वेत मूँगे अवश्य बनाये जाते हैं । परन्तु सीपी टेढ़ी-मेढ़ी परतदार होती है—वह आसानी से पहचानी जाती है ।

बुधरत्न-पन्ना

: ४ :

एक ही तत्त्व से लाल और प्यारा हरा रंग; हवा लगते ही बिगड़ने वाला पन्ना ; कृत्रिम प्रकाश में भी रंग नहीं बदलता ; दृष्टिशक्ति का मित्र पन्ना ; नकली-असली की परीक्षायें।

विविध नाम—संस्कृत—मरकत, पाचि, गरुत्मत्, हरिन्मणि, गरुडांकित, गरुडोद्गीर्ण, गरलारि, सौपर्णि, अश्मगर्भ। **हिन्दी-पंजाबी** पन्ना; **उर्दू-फारसी**-ज़मरुद; **अंग्रेजी**-Emerald.

भौतिक गुण—कठोरता ७·७५; आ० घ०—२·६९ से २·८०, वर्तनांक १·५७—१·५८। नियमित षड्भुजीय आकृति। **दुहरा वर्तन** (पर अधिक नहीं)। अपकिरणन ०·०१४ (यह भी अधिक नहीं होता)। पारदर्शक या पारभासक। **द्विवर्णिता**—हरा और नीलासा-हरा।

बैरुंज का प्यारा रूप—बैरुंज (Beryl) एक पुराना नाम है, जिस से कई प्रकार के रत्नों का बोध होता है। अठारहवीं सदी के अंत में 'बैरुंज' नाम उस रत्न के लिये निश्चित कर दिया गया है जिसको हम 'वैदूर्य' नाम से जानते हैं।

विशुद्ध रूप में बैरुंज रंगहीन होता है, पर इसमें हरे या नीलेरंग की झाँई सदा पायी जाती है। रंग के आधार पर यह अनेक प्रकार का पाया जाता है। **पन्ना** (Emerald) इसी का एक प्यारा रूप है—

इसका अपना ही एक विशेष हरा रंग है जो मखमली घास के रंग के समान हरा होता है। इसी जाति का दूसरा बहुमूल्य रत्न एक्वा-मेरीन अथवा हरितनीलमणि नाम से प्रसिद्ध है। उसका भी अपना अनोखा सौन्दर्य है। जहां बड़े नीले या हरे रत्न की अपेक्षा रहती है वहाँ सबसे पहले इसी हरित नीलमणि को याद किया जाता है। पीला या सुनहरा वैदूर्य (सोने के समान पीले रंग का), और गुलाबी रंग का मोर्गेनाइट भी बैरूंज के (Beryl) के विभेद हैं। बैरुंज के ये सभी विभेद एल्यूमीनियम, बेरिलियम, सिलिका और ऑक्सीजन इन चार तत्त्वों के परमाणुओं से बने हुए यौगिक हैं। बेरिलियम की मात्रा किसी में कम और किसी में अधिक हो जाती है तथा उसके स्थान पर थोड़ी मात्रा में लीथियम, सोडियम, पोटा-शियम, सीसियम तथा रूबेडियन आदि क्षारीय तत्त्व आ बैठते हैं—इनके कारण रंगहीन बैरूंज में विविध रंगों की झांई—पीली, गुलाबी, आ जाती है। **पन्ने का हरा रंग** क्रोमिक ऑक्साइड के कारण होता है। जैसा कि पहले लिख आये हैं, माणिक्य का लालरंग भी उसमें उपस्थित क्रोमियम-तत्त्व के कारण होता है। एक ही तत्त्व की विभिन्न संयोग-अवस्थाओं के कारण रंगों में इतनी भिन्नता है। **यह भी प्रकृति की एक अद्भुत लीला है।** कहते हैं कि कांच में भी यदि उतना ही क्रॉमिक ऑक्साइड मिला दिया जाये जितना कि पन्ने में है तो इसका रंग भी हरा हो जाता है। **पन्ने को गरम करने पर भी**, पानी तो उड़ जाता है, पर **इसका रंग वैसा ही बना रहता है**—इसके रंग पर गरमी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जन्म तथा प्राप्ति के स्थान—पन्ना ग्रेनाइट तथा पेग्मेटाइट चट्टानों के, अतिरिक्त घटक के रूप में दरारों में और परतदार चट्टानों के ढेरों में जन्म लेता है।

एक अत्यन्त रोचक बात यह है कि कोलम्बिया की खदानों से निकले कुछ पन्ने, खदान से निकलने के समय तो स्वच्छ और पारदर्शक होते है—**परन्तु हवा लगते ही उनमें दोष पैदा हो जाते हैं**—वे चटक जाते हैं या उनमें दरारें पड़ जाती हैं।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार बरबर प्रदेश, समुद्र तट, रेगिस्तान के समीपस्थ प्रदेश और तुरुक्ष देश इसकी प्राप्ति के स्थान थे। मिश्र के पूर्वी रेगिस्तान में अभ्रक की परतदार चट्टानों से भी यह प्राप्त हुआ है।

पन्ना संसार में कम से कम ४००० वर्ष से तो सन्मानित रत्न के रूप में प्रसिद्ध है ही। रोमन साम्राज्य, क्लिओपैट्रा तथा महान् सिकन्दर के समय यह मिश्र की खदानों से खूब निकाला जाता था। स्पेनवालों ने दक्षिण अमरीकी विजय के समय पीरू के इंडियन लोगों से बहुत ही उत्कृष्ट पन्ने प्राप्त किये थे। ये सम्भवतः कोलम्बिया की खदानों के पन्ने थे।

खानें—आजकल सर्वोत्कृष्ट पन्नों के लिये कोलम्बिया की खदानें प्रसिद्ध हैं। दूसरे दर्जे के पन्ने यूराल पर्वत (रूस) से और ब्राज़ील से प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, मिश्र, नार्वे, इटली, अफ्रीका, अमरीका तथा भारत में भी पन्ने की खदाने हैं। श्री राजरूप टाँक, जौहरी जयपुर ने विविध खानों के पन्नों में अन्तरों का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि **अमरीकी खानों** का पन्ना पुष्ट होता है; यह रंग और पानी में सर्वोत्तम होता है। **रूस** का पन्ना कम सख्त होता है। **अफ्रीका** के पन्ने में श्याम आभा व काले छींटे होते हैं। **उदयपुर** का पन्ना गहरे रंग का किन्तु चुरचुरा होता है। **अजमेर** के पन्ने में पीलापन अधिक होता है। इस का रंग आकर्षक होता है, पानी भी अच्छा होता है परन्तु कोलम्बिया के पन्ने से कम कठोर होता है। **ब्राजील** के पन्ने में चीरें और

पीलापन काफ़ी होता है। **कोलम्बिया** से जो नये किस्म का पन्ना अभी-अभी आने लगा है वह 'ट्रिपेची' नाम से प्रसिद्ध है। इसकी बनावट छः कलियों की है; कलियों को घिसकर बीच की गिरी का माल तय्यार किया जाता है।

भारत में 'प्यालों के पन्ने' तथा 'जगत् सेठ के पन्ने' इन दो नामों से प्रसिद्ध पन्ने भी मिलते हैं। सुनते हैं कि मुगल बादशाह हुमायूँ के पास पन्ने के कुछ प्याले थे। उन प्यालों के टुकड़े इधर उधर बिखर गये—ये कहीं-कहीं पाये जाते हैं। इसी प्रकार मुर्शिदाबाद के एक जगत् सेठ को किसी विदेशी मल्लाह ने किसी द्वीप से लाकर कुछ उत्कृष्ट पन्ने दिये थे। उन मूल पन्नों से बनाये हुए पन्ने आज तक बाजार में चालू हैं। ये दोनों प्रकार के पन्ने उत्कृष्ट जाति के पन्ने माने जाते हैं।

ऐतिहासिक बातें—कहते हैं प्राचीन काल में पन्ने की खदानें अधिकतर मिश्र के ऊपरी भाग में ही थीं। ये खानें लालसागर के पश्चिमी किनारे के समान्तर स्थित पर्वत श्रेणी में थीं। आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व एक फ्राँसीसी अन्वेषक ने इन खदानों को ध्वस्त अवस्था में ढूंढ निकाला था। उस को यहां जो औजार मिले थे, उनसे पता चलता है कि ये खदानें अति प्राचीन काल की हैं। यूराल पर्वत (रूस) में स्थित खदानों का भी अचानक सन् १८३० ई० में एक किसान को पता लगा था।

दक्षिणी अमरीका के कोलम्बिया की खानों से अच्छे पन्ने तो बहुत पहले भी मिले थे—परन्तु इन का ठीक पता सन् १५५८ में लगा। फिर इनमें से पन्ने निकाले जाने लगे। परन्तु जलवायु तथा स्थानीय सरकार की रुकावटों के कारण काम बीच-बीच में रुकता रहा। अब कोलम्बिया की खदानों से लगभग ८८०,००० कैरट पन्ने प्रतिवर्ष निकाले जाते हैं, परन्तु इनमें से अधिकांश छोटे और सदोष होते हैं।

सबसे बड़ा पन्ने का रवा डेवेनशायर के डयूक के अधिकार में बताया जाता है; यह नियमित षट्कोण के आकार का है। इसका व्यास तथा लम्बाई लगभग दो इन्च है। इसका भार लगभग १३४७ कैरट है। रंग तो इसका बहुत अच्छा है, परन्तु दोषों की इसमें भरमार है। **सबसे बढिया** काट का एक पन्ना कभी रूस के जार के अधिकार में था, इसका तोल ३० कैरेट था। एक छोटा, परन्तु सर्वथा निर्दोष पन्ना, सोने के कंगन में जड़ा हुआ ब्रिटिश संग्रहलाय के खनिज-विभाग में रखा है। सोने में जड़ी निर्दोष पन्ने की एक चौकी भी ब्रिटिश संग्रहालय में है। एक सुन्दर पन्ना लूव्र के संग्रहालय में है; कहते हैं कि यह पन्ना नैपोलियन की अंगूठी में था।

अच्छे पन्नों की कीमत इतनी अधिक है कि थोड़े से धनिक लोगों को छोड़कर बाक़ी लोगों की पहुँच से ये बाहर ही रहते है।

वैज्ञानिक लक्षण—पन्ने के रवे ग्रेनाइट, पेग्मेटाइट और चूने के पत्थर के साथ लगे हुए मिलते हैं। **वे शायद ही कभी निर्मल** होते हों। दोषरहित पन्ने का मिलना लगभग असम्भव माना जाता है। सर्वथा निर्दोष तथा 'परिपूर्ण' पन्ने का मूल्य बढ़िया प्राकृतिक माणिक्य तथा हीरे से भी अधिक होता है। इसमें वर्तन तथा अप-किरणन दोनों ही हैं—पर अधिक नहीं। दक्षिणी अमरीका के पन्ने में अप-किरणन स्पष्ट होता है। **द्विवर्णिता** काफी अच्छी है—यह एक ओर से हरा तथा दूसरी ओर से नीला सा हरा दिखायी देता है। गर्म करने पर यह कठिनता से पिघलता है। अम्लों का इस पर कोई असर नहीं होता। यह दूसरे हरे रंग के पत्थरों के विपरीत अपना वास्तविक रंग **कृत्रिम प्रकाश में भी बनाये रखता है।** प्लिनी ने तो यहां तक लिखा है कि पन्नों की द्युति न सूर्य के प्रकाश में नष्ट होती है, न छाया में और न मोमबत्ती के प्रकाश में। अपने प्यारे हरे रंग के कारण पन्ना आँखों के लिये अच्छा माना

गया है। प्लिनी के अनुसार, आंख पर पन्ने का अधिकार सब रत्नों से अधिक है–आंख को सबसे अधिक तृप्ति पन्ने को देखकर ही मिलती है—यहां तक कि यदि किसी दूसरी वस्तु को देखते-देखते आंखें थक गई हों तो पन्ने को देखने से वे पुन: स्वस्थ हो जाती हैं।

पन्ना अत्यधिक भंगुर है—इसलिये आभूषणों में जड़ते समय बहुत सतर्क रहना चाहिये। काटने पर इसकी मेखला पतली नहीं रखनी चाहिये।

श्रेष्ठ, शुभ तथा उत्कृष्ट पन्ने के लक्षण—प्राचीन शास्त्रों में पन्ने को सात गुणों का बताया है—हरेरंग का; भारी (दड़क दार); स्निग्ध लोचदार; चारों ओर किरणों को बखेरने वाला; छूने में देदीप्यमान—सूर्य के समान स्वत: प्रकाश से प्रदीप्त;—अर्थात् श्रेष्ठ पन्ने का शरीर ऐसा होना चाहिये। 'आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार **शुभ** पन्ना, जलकी भांति स्वच्छ—पारदर्शक; भारी, आबदार, लोचदार, मृदुगात्र; अव्यंग—जो टेढ़ामेढ़ा न हो; तथा बहुरंगी हो। **उत्तम पन्ना** वह बताया गया है कि जो शेवाल (घास), मोर और नीलकंठ की पॉंख, शाद्वल (एक प्रकार की घास), हरेरंग का कषाय, कौए का पंख, जुगूनू तथा शिरीष पुष्प की झांई के तुल्य आभा को निरन्तर धारण किये हुआ रहे। **इनमें से भी जो सूर्य-किरणों से संयुक्त किया जाने पर, अपने आसपास की चारों ओर की वस्तुओं को हरा कर दें** वह पन्ना उत्तम जाति का माना जाता है। यह बात हम पहले ही लिख आये हैं अपने **मखमली घास** के रंग के कारण ही पन्ने का अधिक मान रहा है।

दोष—निम्नलिखित दोषों से युक्त पन्ना अच्छा नहीं माना जाता—लाल-पीली (मिली हुई) आभा वाला; बालू के तुल्य कणदार अथवा कर्कश; रूखा (चमकहीन); कालापन लिये हुआ; हलका—हाथ में लेकर देखने से कम दड़क का प्रतीत होने

वाला; चिपटा हुआ—जिसके फलक भीतर की ओर सिकड़े हुए प्रतीत हों; वक्र और ऊबड़-खाबड़ आकृति का; काला और चुरचुरा।

'रत्न प्रकाश' के लेखक के अनुसार 'जिस पन्ने में लोच, निम्मस और जर्दी हो; जिसका रंग नीम की पत्ती के हरे रंग के समान हरा हो; वह उत्तम माना जाता है। नीम की पत्ती के हरे रंग में पीत आभा स्पष्ट भासती है; पन्ने में यही पीत आभा अपेक्षित है।' 'पंचतंत्र' के एक प्रसिद्ध श्लोक में लिखा है कि कांच के समीप यदि 'सोना रख दिया जाये तो कांच की आभा पन्ने की आभा हो जाती है—इस 'मारकती' चमक को ही, मानो, पंचतंत्रकार भी पन्ने के हृदयहारी रंग का 'प्राण' समझते हैं।

परन्तु एक पाश्चात्य लेखक का कहना है कि **पीली झांई** वाले पन्ने का मूल्य कम होता है। श्रेष्ठ पन्ने तो गहरे हरे से लेकर घास के से हरे रंग के होते हैं—जब इस हरे रंग में कांच की आभा मिल जाती है तो वही मखमली आभा श्रेष्ठ पन्ने की होती है। यों पन्ने में पीले छींटे होना तो दोष माना ही गया है।

पन्ने के रवे की काटें व सजावट—हम ऊपर लिख आये हैं कि पन्ने के अधिकांश रवे सदोष ही मिलते हैं। लेंस से देखने पर तो प्रायः सभी सदोष दिखायी देते हैं और उन्हें 'परदार' (feathered) पन्ना के नाम से बेचा जाता है।

पन्ने के जो रवे अपेक्षया स्वच्छ होते हैं उन को प्रायः आयताकार अथवा वर्गाकार पहल वाली आकृतियों में काटा जाता है, और इस प्रकार की काट का नाम भी 'पन्ना काट' हैं। सदोष पन्ने को कैबोशौंग काट में काटा जाता है। और उसके ऊपरी उन्तोदर तलपर नक्काशी की जाती है। आदर्श तो यह है कि रवों को इस प्रकार काटा

जाये कि उनका रंग सर्वथा एक-सा गहरे-से-गहरा हरा दिखायी दे और उसकी कमियां अधिक से अधिक ओझल हो जायें। रोमन तथा पूर्वीय प्रदेशों के लोग पुराने जमाने में षड्‌भुज टिकुलियां बनाकर, उन्हें पिरोकर पहना करते थे।

रोगों में प्रयोग—'आयुर्वेद प्रकाश' (अध्याय ५ श्लोक १०५) में पन्ने के विषय में लिखा है कि यह विषको मारने वाला, शीतल, रसका मीठा, अम्ल तथा पित्त को दूर करने वाला, रुचिकारक, पोषक और भूतव्याधा को दूर करता है।

रसतंत्र में पन्ने के निम्नलिखित गुण-कर्म बताये हैं—दीपन, रसायन, ओजवर्धक तथा विषघ्न।

"रसरत्नसमुच्चय" में लिखा है कि—

ज्वर-छर्दि-विष-श्वास-सन्निपाताग्निमान्द्यनुत्।
दुर्नामि-पाण्डु-शोथघ्नं ताक्ष्यमोजो विवर्धनम्॥

पन्ना बुख़ार, वमन, विष, दमा, सन्निपात, अपच, बवासीर, पाण्डु, शोथ—आदि रोगों को नष्ट कर शरीर के बल एवं सौन्दर्य को बढ़ाता है। अभिप्राय यह है कि चिकित्सा के सम्बन्ध में पन्नें को विषघ्न एवं बलवीर्यवर्धक सभी ने स्वीकार किया है। यह हम पहले ही बता आये हैं कि रत्नों का रोगों में प्रयोग भस्म तथा पिष्टिका आदि के रूप में किया जाता है; अतएव विशेषज्ञ वैद्य की सलाह पर निपुण वैद्य द्वारा तय्यार की हुई भस्म आदि का प्रयोग उचित मात्रा में किया जाना अधिक हितकर है।

आयुर्वेद के अनुसार पन्ने की भस्म ठंढी, मीठी और मेदवर्धक है। यह क्षुधावर्धक है और अम्लपित्त तथा जलन को दूर करती है। इसीलिये तीव्र तथा मृदुज्वर, मिचली और वमन, विषक्रिया, दमा

अजीर्ण, बवासीर पाण्डु और हर प्रकार के घाव और सूजन को दूर करती है।

प्यारे हरे रंग के कारण पन्ना दृष्टि शक्ति के लिये उत्तम है। मिरगी से बचाता है; पेचिश को दूर करता है। सन्तान-जन्म के समय स्त्री का परम सहायक है।

हलके हरे से गाढे हरे रंग तक का पन्ना, अच्छी प्रकार घिसा हुआ, मुलायम तथा स्वच्छ हो, उसमें दाग, चीर या धुआं न हो और फिर उसमें भार भी पर्याप्त हो तो वह बहुमूल्य रत्न समझा जाता है। एक रत्ती वजन का यह रत्न सदा अपने संग्रह में रखना चाहिये।

रत्न चिकित्सा के अनुसार, एक ड्राम सुरासार से भरी एक शीशी में सुरासार में धोया आधी रत्तीभर पन्ना सात दिन तथा सातरात तक अंधेरे में रख लेना चाहिए। फिर उसमें २० नं० की एक औंस गोलियां डाल दीजिये और उन्हें इतनी देर तक रखिये कि वे सुरासार को भली भांति चूस लें। रत्न चिकित्सा के प्रयोजनार्थ ये गोलियाँ 'पन्ना-गोलियां' कहलायेंगी।

इस चिकित्सा के अनुसार हरा रंग शरीर के मांस-स्थान पर विशेष अधिकार रखता है। शरीर में हरे रंग की कमी से मांस पर प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से, इन गोलियों का प्रयोग दमा, फोड़े फुंसियां, सर्दी का प्रकोप, हृदय रोग, अम्ल की अधिकता, इंफ्लूएंजा उपदंश, शीतपित्त (Urticaria), सिरचकराना, आदि रोगों में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

दैवी शक्ति—पन्ना बुधग्रह का रत्न है: जो व्यक्ति बुधग्रह के प्रभाव शाली होने की अवधि में उत्पन्न होते हैं—उनको इसका धारण करना उपयोगी है—अर्थात् उस समय जब कि सूर्य मिथुन-राशि का होता है—१५ जून से १४ जुलाई तक और १५ सितम्बर से १४ अक्तूबर तक। अंक ज्योतिष के अनुसार इन व्यक्तियों का

मूल ंक ५ होता है। जिन लोगों को अपने जन्म की ठीक तारीख ज्ञात न हो, वे पाश्चात्य विधि से अपने नाम के अक्षरों के अंकों को जोड़ कर अपना मूल अंक निकाल सकते हैं।

बुध ग्रह के प्रभावाधीन जन्मे व्यक्ति अवसर को पहचान कर उससे लाभ उठाने वाले परन्तु विपदाओं में शीघ्र घबरा जाते हैं। वे किसी के सहयोग में तो बड़ी योग्यता से काम करते हैं—परन्तु स्वयं अकेले काम करते हुए कठिनाई आने पर टूट जाते हैं। ऐसे व्यक्ति छोटी-छोटी तुच्छ बातों से घबरा उठते हैं।

धारणविधि—ऐसे व्यक्तियों को चाहिए कि बुध के अनिष्ट प्रभाव की शांति के लिये सोने की अंगूठी में पन्ने को मँढवा कर मध्यमा अंगुली में धारण करें—उन्हें यह अंगूठी अपने जन्म मास की ५, १४ और २३ तारीख को सूर्योदय से दो घंटे पश्चात् पहननी चाहिये—यदि उस दिन बुधवार हो तो और भी अधिक शुभ होगा। इसको धारण करते समय निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करना बताया गया है—ओ३म्। उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च। अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

पन्ना धारण करने वाले की शुचिता की रक्षा करता है; **यदि उसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र हो रहा हो तो उसका भंडा फोड़** देता है; इसका रंग अमरता का प्रतीक माना जाता था; इसलिये पादरी वर्ग में इसका खूब प्रचलन था। पन्ना पहिनने वाले की बुद्धि, तथा स्मृति शक्ति बढ़ती है।

बदल—जो व्यक्ति पन्ना खरीद सकने की सामर्थ्य न रखते हों उन्हें हरित नील मणि (Aquamarine) धारण करनी चाहिये—इसका भी वही प्रभाव होता है जो पन्ने का होता है।

इस सम्बन्ध में पृष्ठ ५३-६५ भी देखिये।

संश्लिष्ट पन्ने—पहले पहल १९१० में कैरोल चैथम नाम के वैज्ञानिक ने संश्लिष्ट पन्ने बनाये थे। १९३५ में उसकी बतायी हुई प्रक्रिया द्वारा निर्मित संश्लिष्ट पन्ने बाजार में बिकने लगे हैं। इस प्रकार के एक हजार कैरेट तक के रवे बनाये गये हैं। और इनसे काट कर पहल-बन्धे रवे पांच कैरेट तक के बाज़ार में उपलब्ध हैं।

परीक्षा—इन संश्लिष्ट पन्नों का **रंग** नीला-सा हरा होता है—प्राकृतिक पन्नों में यह रंग आमतौर पर नहीं पाया जाता। इस प्रकार के संलिष्ट तथा प्राकृतिक पन्नों में कुछ अन्य **वैज्ञानिक** अन्तर इस प्रकार हैं—(१) कोलम्बिया के प्राकृतिक पन्ने के कम से कम वर्तनांक से भी ऐसे संश्लिष्ट पन्ने का वर्तनांक लगभग .०१ कम है (२) संश्लिष्ट की दड़क (आ० घ०) प्राकृतिक कोलम्बियाई पन्ने के कम से कम आपेक्षिक घनत्व २·७१ से भी कम होती है। (३) पराबैंगनी किरणों में संश्लिष्ट पन्ने अंधेरे में **प्रतिदीप्त** हो जाते हैं। गहरे हरे रंग के प्राकृतिक पन्नों में यह प्रतिदीप्ति बहुत ही कम बार और बहुत थोड़ी मात्रा में दिखायी देती है। (४) लघुतरंग पराबैंगनी किरणों में प्राकृतिक पन्ना अपारदर्शक होता है—संश्लिष्ट पारदर्शक होता है (५) संलिष्ट पन्नों में तिनकों के गुच्छे जैसे अथवा झीने परदे-सरीखे अन्तरावेश होते हैं और प्राकृतिक पन्नों से उनका वर्तनांक कम (१·५६७-१·५६४) और आ. घ. (दड़क) बहुत कम (२·६७) होता है। २·६५ से २·६६ तक के आ. घ. वाले द्रव में प्राकृतिक पन्ना सदा डूबेगा ही और संश्लिष्ट लगभग सदा तैरता रहेगा।

सावधान—पन्नों में अक्सर दरारें होतीं हैं—जो खाली आँख से ही दीख जाती हैं। इस कारण इनके दाम बहुत कम लगते हैं। लोग इस दोष को छिपाने के लिये ऐसे पन्ने पर तेल चुपड़ देते हैं। तेल और पन्ने का वर्तनांक एक होने से अब ये दरारें खाली आंख

से पकड़ में नहीं आतीं। तेल यदि नीरंग हुआ तो उसमें पन्ने का-सा रंग भी मिला देते हैं। बस, मामूली-सी गर्मी देने से यह तेल ऊपर आ जाता है। **चतुर जौहरी को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये।**

कांच के बने कृत्रिम पन्ने—(१) कांच के बने पन्ने को छूकर देखा जाय तो वह गरम प्रतीत होगा। असली अथवा प्राकृतिक पन्ना रवा होने के कारण ताप का सुवाहक होता है और स्पर्श में ठंढा लगता है। (ख) कांच के पन्ने को आँख के सामने थोड़ी देर रखने पर गरमी प्रतीत होगी—असली पन्ने को रखने से आंख में ठंढक आ जायेगी।

(२) कांच का पन्ना हाथ में रखने पर भारी प्रतीत होता है—असली पन्ना हलका, मुलायम और चित्ताकर्षक होता है।

(३) नकली पन्ने को लकड़ी पर रगड़ा जाये तो इस की चमक बढ़ जाती है।

(४) दान्त कुरेदने की अथवा दियासलाई की तीली में लगा-कर पानी की एक बूँद रत्न की सतह पर धीरे से रखिये। रत्न बनावटी होगा तो बूँद उस पर फैल जायेगी परन्तु असली रत्न की सतह पर बूँद बनी रहेगी।

(५) नकली पन्ने की टूट पर चमकीली धारियां होती हैं।

प्लास्टिक का पन्ना—(१) प्लास्टिक से बने नकली पन्ने का आपेक्षिक गुरुत्व १·५८ से कम होता है। इसकी कठोरता भी कम होती है – इन दो विलक्षणताओं से इन्हें असली से अलग किया जा सकता है। (२) प्लास्टिक के बने कृत्रिम पन्ने में यदि बिजली से गरम की हुई सूई की नोक चुभा दी जाय तो उससे सडाँद आयेगी। (३) यों भी पिन अथवा उस्तरे के पत्ते से यह सरलता से कट जाता है।

गुरुरत्न—पुखराज

: ५ :

'पुखराज' नाम से धोखा : घिसने से रंग में निखार : जच्चा का मित्र : कुष्ठ और बवासीर का शत्रु : पुखराज का बदल—सुनैला।

विविध नाम—संस्कृत पुष्पराग, पीतस्फटिक, पीतमणि, जीवरत्न आदि; **हिन्दी पंजाबी उर्दू फारसी**–पुखराज; **अंग्रेजी**–Topaz.

भौतिक गुण—कठोरता, ८; आपेक्षिक घनत्व, ६·५३ वर्तनांक—१·६१तथा १·६२; दुहरावर्तन ०·००८ तथा अपकिरणन ०·०१४ है। द्विवर्णिता इसमें तीक्ष्ण नहीं होती। इसको रगड़ने से बिजली उत्पन्न होती है। आभा इसकी काचसम होती है।

कभी सभी पीले रत्नों को पुखराज' या Topaz कहा जाता था—विशेषतया ओलिविन का पीला उपभेद क्राइसोलाइट तथा पीला स्फटिक, साइट्रीन, तो पुखराज के नाम से ही बिकते थे। अब भी जौहरी पीले नीलम को 'प्राच्य पुखराज' धुँधले स्फटिक को 'धुँधला 'पुखराज' पीले स्फटिक को स्कॉच पुखराज' नाम से बेचते हैं। प्लिनी ने जिस पुखराज का वर्णन किया है, वह क्राइसोलाइट हो है। परन्तु 'प्राच्य पुखराज' अथवा पीले नीलम की कठोरता ९ है और उसका आ० घ० ४ है; स्कॉच अथवा स्पेनिश पुखराज की कठोरता ७ तथा आ० घ० ३·६५ है। जब कि असली पुखराज की कठोरता ८, तथा आ. घ. ३·४ से ३·६ तक है।

असली पुखराज ऐल्यूमिनियम का फ्लूओ-सिलिकेट है। फ्लोरिन तत्त्व से बने थोड़े से रत्न-खनिजों में पुखराज की गिनती है। इसमें फ्लोरीन की मात्रा १५·५ तथा अल्पमात्रा में जल भी होता है।

इसके भीतर अत्यन्त सूक्ष्म तरल अथवा गैसीय पदार्थ, विशेषतया द्रव कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य अशुद्धियाँ पायी जाती हैं। असली प्राकृतिक पुखराज के रवे त्रिकोणाकार तथा मीनारी सिरोंवाले होते हैं। इन्हें विषमलम्बाक्ष समूह में रखा जाता है।

निर्माण तथा प्राप्ति—पुखराज प्रायः ग्रेनाइट, नाइस तथा पैग्मेटाइट शिलाओं पर बिनबुलाये मेहमानों की तरह आ घुसे आग्नेय पदार्थों से निकलने वाली जलवाष्प तथा फ्लोरीन गैस की क्रिया से **बनता** है। इसके साथ मिलने वाले दूसरे खनिज टूर्मेलीन, स्फटिक, टंगस्टन, आदि हैं परन्तु पुखराज भारी तथा टिकाऊ होने के कारण इन शिलाओं से बहकर आये कंकड़ों के रूप में नदी-तलों पर भी मिल जाता है। **सैक्सनी** में यह टूर्मेलीन बिल्लौरी शिलाओं में अस्तर रूप में जमा हुआ मिलता है। **रूस और साइबेरिया** में प्रायः नीले रंग के पुखराज ग्रेनाइट की शिलाओं की गुफ़ाओं में मिलते हैं। सबसे अधिक **बढिया किस्म** के पुखराज **ब्राजील** की खानों से प्राप्त होते हैं। **रोडेशिया** से प्राप्त होने वाले पुखराज प्रायः रंग-रहित अथवा पीले-से नीले रंग के होते हैं; काटने पर ये सुन्दर लगने लगते हैं। श्री लंका, जापान, मैक्सिको, तस्मानिया, कोलोरेडो, न्यू इंग्लैंड आदि से भी अच्छे पुखराज प्राप्त होते हैं। श्री लंका से प्राप्त पुखराज पीले, हलके हरे, अथवा रंगरहित होते हैं। वहां इन्हें 'जल नीलम' कहा जाता है। जो पुखराज माणिक्य साथ के मिलते हैं वे उत्तम जाति के होते हैं।

श्रेष्ठ तथा शुभ पुखराज—प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार, उत्तम पीली कांति वाला, हाथ में लेने पर वज़नी लगता, सुन्दर रंगका, शुद्ध, अतिशय स्वच्छ (पारदर्शी), धब्बों से रहित, बड़ा दाना, समअङ्ग-वाला, मुलायम, पीली कनेर अथवा चंपा या अमलतास के फूल के समान पीतवर्ण, स्पर्श में चिकना, छिद्ररहित **और** चमकदार पुख-

राज श्रेठ और शुभ माना जाता है। इस प्रकार का पुखराज **क्षयरोग नाशक, कीर्ति, पराक्रम, सुख, आयु एं सम्पत्ति का वर्धक बताया गया है।**

उत्तम जातका पुखराज वह कहलाता है कि जो कसौटी पर घिसने से अपने रंग को और अधिक बढ़ा देता है। **दोष**-काले रंग की बूँद-बूँद-सी वाला; दो छिद्रयुक्त; सफेद रंग का; मलिन; हलका; बेरंग; बालू के समान छूने में करकरा, चमकरहित, ऊँचा-नीचा; मुनक्का के रंग जैसा; लाल-पीले मिलेरंग का; पीला-सफेद मिले पाण्डु रंग का पुखराज सदोष, और इसी कारण अग्राह्य है।

पुखराज कई किस्म के मिलते हैं—परन्तु सामान्यतया वे रंग-रहित ही होते हैं। और जल जैसे स्वच्छ होते हैं। रंगहीन तथा वे पुखराज जिन में पीली से लेकर शेरी-शराब की-सी आभाएँ हों, बहुत अधिक प्रचलित हैं। हल के नीले तथा हलके-हरे रंग के पुखराज भी कभी-कभी मिल जाते हैं परन्तु प्रकृति से ही लाल और गुलाबी पुखराज अत्यन्त दुर्लभ होते हैं। बाजार में जो गुलाबी पुखराज बिकते हैं, उनमें से अधिकांश को **कृत्रिम प्रक्रिया से गुलाबी** किया हुआ होता है। उपयुक्त भूरे-से पीत वर्ण या गहरे पीत वर्ण के पुखराज को एक छोटी सी कुठाली या हुक्के की चिलम में रख, रेत, अथवा मैग्नीशिया सरीखे, रासायनिक दृष्टि से अक्रिय पदार्थ के साथ भर कर, सतर्कतापूर्वक, गरम करते रहें। इस प्रकार प्राकृतिक रंग निकल भागेगा। परन्तु ठंढा हो जानें पर सुन्दर गुलाबी रंग प्रकट हो जायेगा, जो स्थायी रहेगा। इस बढ़िया रंग का मूल्य बहुत बढ़ जाता है। यदि आंच धीमी रखी जायेगी तो गुलाबी रंग के स्थान पर सामन मछली को खाल का-सा नारंगी हलका गुलाबी रंग आयेगा। गरम करने पर पीले पुखराजों का रंग सर्वथा उड़ जाता है और रूस की खदानों से मिले हलके पीले रंग के पुखराज

धूप में रखने पर अपना रंग खो बैठते हैं। यही कारण है कि इस समय ब्रिटिश संग्रहालय में रूसी पुखराजों को ढककर रखा गया है।

पुखराज **सरलता से चिर जाता है**—इसलिये इसको सावधानी से बरतना चाहिये। फिर भी यह एक पर्याप्त कठोर पत्थर है; कुरुन्दम (जैसे लाल तथा नीलम) वर्ग के रत्न तथा हीरा ही इससे अधिक कठोर होते हैं। **इसको खूब चमकाया** जा सकता हैं और इसीलिये इसकी अपनी एक विशेष मसृण या **चिकनी चमक** होती है। खूब रंगीन पुखराजों में द्विवर्णिता स्पष्ट होती है परन्तु धुँधले पुखराजों में द्विवर्णिता मुश्किल से दिखायी देती है। रगड़ने पर इससे तीक्ष्ण विद्युत्-लहरें निकलने लगती हैं।

सौन्दर्य को जगाने के लिये—पुखराज 'ज्वलन्त' तथा 'जाल' काटों में काटा जाता है। परन्तु बड़े टुकड़ों में कुछ अतिरिक्त फलक भी बनाये जाते हैं। बहुत से पुखराजों की मेखलायें अंडाकार वृत्ताकार अथवा दीर्घ आयत के आकार की बनायी जाती हैं। पुखराज में दोष, त्रुटियां तथा पर भी होते हैं। कई रत्न यों अच्छे होते हैं परन्तु उनमें उपयुक्त रंग का अभाव मजा किरकिरा कर देता है।

चिकित्सा में प्रयोग—'आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार, पुखराज दीपन, पाचन और हलका होता है और शीतवीर्य, अनुलोमन, रसायन तथा विषघ्न होता है।

यह निम्नलिखित व्याधियों को नष्ट करता है—विषक्रिया, उल्टी, कफ-वायुविकार, मन्दाग्नि, **कुष्ठरोग, बवासीर** और जलन, पीलिया, नक्सीर आदि।

पुखराज को गुलाब जल और केवड़ा-जल में २५ दिन तक घोटकर, कज्जल की भाँति पीस लेवे और फिर इसको छाया में

सुखाकर रखले और सेवन करे। वैद्य लोग श्वेत पुखराज की भस्म बनाते हैं। इसकी मात्रा चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक है।

रत्नचिकित्सा—में श्वेत पुखराज का प्रयोग किया जाता है। इसको प्रिज़्म (त्रिकोण) कांच से देखने पर आसमानी रंग का दिखायी देता है। अल्कोहल में रखने पर श्वेत पुखराज हीरे के समान चमकता है। बहुत चमकीला, बेदाग और अच्छे सुडौल आकार का पुखराज प्रायः नहीं मिलता; मिले तो उसके नकली होने का संदेह करना चाहिये और वैज्ञानिक विधियों से उसकी परीक्षा करके ही रत्न चिकित्सा में उसका प्रयोग करना चाहिये। रत्नचिकित्सा के एक लिये एक **रत्ती** ही काफी होता है।

इस चिकित्सा में इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में वर्णित विधि से 'श्वेत-पुखराज'—गोलियां अथवा असमानी गोलियां काम में लाते है। इन 'श्वेतपुखराज' गोलियों द्वारा दूर हो जाने वाले रोग इस प्रकार हैं :—पित्त प्रकोप तथा पित्तज्वर; खून बहना; रक्तचाप (खून के दबाव की वृद्धि); गाँठयुक्त प्लेग, जले-कटे के घाव; हैजा, कुत्ताखांसी, घाव, पेचिश या रक्तातिसार; दानेदार ज्वर, गलगंड, मसूढ़े आदि की सूजन; सिरदर्द; सूजी हुई आंतें; मस्तिष्क प्रदाह; मिचली, दिल की धड़कन; स्कार्लेट (सुर्ख) ज्वर (Sarlet fever) आदि।

दैवी शक्ति—जैसा कि हम पुखराज की वैज्ञानिक विशेषताओं में चर्चा कर आये हैं, पुखराज को रगड़ने अथवा तपाने पर वह विद्युत् की लहरें छोड़ता है। इस विशेषता के आधार पर प्रसूति के समय पुखराज को गरम करके गर्भिणी को देने का उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि बिजली की लहरें गर्भिणी को प्रजनन में सहूलियत पहुँचाती हैं। विद्युत्-गुण में केवल टूर्मेलीन ही पुखराज

से ही बढ़कर होता है ।

ज्योतिष की दृष्टि से पुखराज गुरु ग्रह का प्रतिनिधि रत्न है । गुरु को पुष्ट करने के लिये इस पुस्तक के दूसरे भाग में (पृ० ५३ से ६५ तक) वर्णित नियमों के अनुसार इसके धारण का विधान है । जिन व्यक्तियों का जन्म सूर्य की धनुराशि में अर्थात् १५ दिसम्बर से १४ जनवरी तक हो उनका रत्न पुखराज है । सात या १२ कैरेट का पीला पुखराज, विशेष रूप से तीसरी अंगुली में, सोने की अंगूठी में जड़वा कर धारण करना चाहिये । रत्न का वजन ६, ११ अथवा १५ रत्ती तो कभी भी नहीं होना चाहिये । इसको धारण करने का **मंत्र** निम्नलिखित है :—

ओ३म् । बृहस्पते अति अदर्यो अर्हा द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यदीदयच्छवस ऋतप्रजानां तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥

पुखराज समृद्धि, स्वास्थ्य, दानशीलता, सांसारिक सुख दीर्घायुष्य आदि प्रदान करता है ।

ब्रिटिश संग्रहालय में रखी एक प्राचीन पुस्तक के अनुसार, पुखराज के धारण करने से रात को डर नहीं लगता; कायरता समाप्त हो जाती है; बुद्धि को तो यह बढ़ाता ही है, साथ ही क्रोध को और पागलपन को भी शांत करता है । और आकस्मिक मृत्यु की आशंका को दूर कर देता है ।"

पुखराज का बदल—जो व्यक्ति असली पुखराज नहीं खरीद सकते वे इस का उपरत्न 'सुनेला' या 'सोनेला' धारण कर सकते हैं । **सोनेला** अथवा सुनेला साइट्रिन पीला पत्थर है इसमें पीले पुखराज का भ्रम होता है परन्तु इसकी दड़क कम और अंग नरम होता है । यह पूर्ण पारदर्शक होता है ।

असली पुखराज की पहचान—पुखराज से जौहरी तथा साधारण जन सभी सुपरिचित हैं । परन्तु सामान्यत: तो वे इसके बदल—

जैसे कि साइट्रिन बिल्लौर—अथवा संश्लिष्ट तथा नकली प्रति-कृति—कांच के पुखराज को पुखराज समझ लेते हैं। प्राचीनकाल में तो प्रत्येक पीले रत्न को, उसके आगे 'प्राच्य' आदि उपसर्ग लगाकर पुखराज कह दिया जाता था। आजकल असली पुखराज को जौहरी 'बहुमूल्य पुखराज' नाम से बेचते हैं।

बहुमूल्य पुखराज के अत्यन्त प्रसिद्ध रंग पारदर्शक पीतरंग, पीतिमायुक्त भूरा और नारंगी-भूरा, हैं। दूसरे कम उपलब्ध रंग—बीचका लाल (जो प्रायः, परन्तु सदा नहीं) गरम करने पर ही आता है, बहुत हलके से लेकर हलका नीला, बहुत हलका हरा, बैंजनी, हलका हरा-सा पीला, तथा रंगहीनता, भी मिलते हैं।

पुखराज का भ्रम इन रत्नों से सम्भव है :—बिल्लौर, टूर्मलीन, कुरुन्दम समूह (गुलाबी, पीला और हलका नीला नीलम), बैरुंज वर्ग के रत्न (स्वर्ण-बैरुंज, हरित मणि आदि), संश्लिष्ट कुरुन्दम और काँच। टूर्मलीन और काँच के नकली पुखराज देखने में असली पुखराज से लगते हैं–इनका वर्तनांक भी पुखराज के वर्तनांक जितना ही है। परन्तु कांच में दुहरा वर्तन नहीं है; टूर्मलीन का आ. घ० पुखराज से बहुत कम है। पुखराज जितनी हलकी आभा के रत्न में जितनी बहुर्णिता होने की आशा रहती है—उस से कहीं अधिक बहुवर्णिता इसमें पायी जाती है। पीता पुखराज में स्पष्ट तीन रंग--भूरा-सा-पीला, पीला और नारंजी-पीला—दिखायी देते हैं। नीले पुखराज में नीले रंग की मात्रा के अनुसार, रंगहीन और हलका नीला—ये दो रंग दिखायी देते हैं।

पीले बिल्लौर से इसको पहचानने के लिये दोनों की घनता देखनी चाहिये। ब्रामोफॉर्म को, बेंजीन आदि द्रवों से हलका करके २·६५ घनता का बना लेना चाहिये। इस में रंगहीन या पीला बिल्लौर और ऐमीथिस्ट सब या तो लटके रहेंगे अथवा धीरे-धीरे डूबेंगे या धीरे-धीरे ऊपर उठेंगे। पुखराज डब जायेगा।

इमिटेशन का अंग असली पुखराज से अधिक नरम होता है; रुखा होता है और चमक कांच की-सी होती है; इमिटेशन का दूधक स्थिर, रुखा तथा आभारहित होता है।

असली पुखराज को पहचानने की ये विधियां भी बतायी गयी हैं—(१) सफेद कपड़े पर रखकर धूप में देखें तो कपड़े पर पीली झांई-सी दिखायी देगी। (२) चौबीस घंटे तक दूध में रखने के बाद असली पुखराज की चमक क्षीण नहीं होती। (३) जहरीले जानवर द्वारा काटे गये स्थान पर असली पुखराज को लगाने से वह उसके विष को खींच लेता है।

शुक्ररत्न—हीरा, वज्र

: ६ :

हीरक द्युति; 'वारितिर' हीरा; उत्कृष्ट हीरा; हीरा बनाने की मशीन; प्रसिद्ध ऐतिहासिक हीरे-असली-नकली की पहिचान; रोगों में प्रयोग दैवी शक्ति, पुत्र चाहने वाली स्त्रियों के लिये उचित हीरा; विवाह संबन्ध में मधुरता।

विविधनाम : संस्कृत—वज्र, दिद्युत्, अर्क, भिदुर, शतकोटि, हीरक, अभेद्य, सायक, कुलिश, आदि; **हिन्दी-पंजाबी**—हीरा; **उर्दू-फारसी**—अल्मास; अंग्रेजी—Diamond.

भौतिक गुण—कठोरता—१०; आ० घ० ३·४; वर्तनांक—२·४१७५; दुहरा वर्तन तथा अनेक वर्णिता का अभाव; अपकिरणन ०·४४। हीरे में ये तीन विशेषताएँ सभी खनिज पदार्थों तथा रत्नों से अधिक पायी जाती हैं—(१) यह सबसे अधिक कठोर है; इस कारण कोई भी पदार्थ इसको खुरच नहीं सकता; न यह किसी दूसरे पदार्थ से घिसा जाता है। (२) इसका वर्तनांक सबसे अधिक है; इसके

कारण इस के भीतर गया हुआ प्रकाश भीतर से पूरा-पूरा लौटकर आ जाता है अर्थात् प्रकाश का पूर्ण परावर्तन होता है, जिसके कारण इसकी दमक सब रत्नों से अधिक है; इस दमक को हीरक द्युति (चमक) नाम दिया गया हैं। (३) अपकिरणन भी इसमें सब रत्नों से अधिक पाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अच्छे कटे हुए हीरक खण्ड के शिखरवाले अनीक में से झांक कर देखने से इसमें से इन्द्रधनुषी रंगों की झिलमिलाहट खूब फूटती दिखायी देती है। गरुड़ पुराण में तो यहाँ तक लिखा है कि हीरे के किनारे टूटे हुए हों, उस पर बिन्दु और रेखाएँ भी हों, परन्तु, 'इन्द्रायुध'—इन्द्रधनुष—की सी लौ हो तो वह हीरा **धन, धान्य और पुत्रों का दाता होता है।**

वारितर—वर्तन के गुण की अधिकता के कारण हीरे को जब जल में डुबो दिया जाता है तब भी इस की दमक उतनी ही दिखायी देती है जितनी कि वायु में रखते हुए थी—ऐसा दीखता है कि **मानो यह पानी में तैर रहा हो।** इसी प्रकाशीय गुण का यह परिणाम भी है कि जल या ब्रोमोफॉर्म या मिथाइलीन आयोडाइड में डुबोने पर उत्कृष्ट हीरा द्रव के तल से बहुत अधिक उभरा हुआ—ऊपर आया हुआ—दिखायी देता है। कम वर्तनांक के, इसके स्थान पर दिये जाने वाले संश्लिष्ट नीलम और संश्लिष्ट कंटकिज आदि दूसरे खनिज, द्रव में डुबोने पर न तो इतने उभर कर आये दिखायी देते हैं और न इनकी वह चमक ही रहती है जो वायु में दिखायी देती है।

गरुड़ पुराण आदि भारत के प्राचीन ग्रन्थों में कहा है कि जो हीरा '**वारितर**' होता है वह सर्वोत्कृष्ट होता है। प्रतीत होता है कि उस प्राचीन युग में भी भारत के वैज्ञानिक हीरे की इस विशेषता से सुपरिचित थे—भले ही आज इनके कार्यकारण सम्बन्धों

का विश्लेषण लुप्त हो चुका है। शुक्रनीति में भी 'वारितर' हीरे को सर्वोत्कृष्ट माना है।

वैज्ञानिक विश्वकोश' में लिखा है कि जब हीरा–मिली तलछट में पानी मिलाकर उसको बहाया जाता है तो हीरे के छोटे-छोटे कण पानी पर तैरते हैं—इसका कारण यह है कि एक तो हीरा स्वयं जलद्वेषी या जलविरोधी (hydrophobic) ; है दूसरे पृष्ठ तनाव (surface tension) तैराने से इसकी सहायता करता है। शेष जलस्नेही तलछट नीचे बैठ जाती है।

इसके फैलाव का गुणांक बहुत कम है और अत्यन्त **ऊँचे ताप-मान पर भी, तपाकर लाल कर देने पर भी, यह कठोर बना रहता है**—इसलिये औद्योगिक कामों में इसका स्थान बहुत ऊँचा हो गया है। सन् १९४० से तो औद्योगिक हीरों की उपयोगिता इतनी बढ़ गयी है कि **अमरीकी सरकार के सुरक्षाविभाग ने इसको युद्ध का एक आवश्यक सामान** घोषित कर दिया है। अत्यधिक कठोरता के कारण रत्न हीरे अपनी चमक नहीं खोते और इसी गुण के कारण ओद्योगिक हीरे उद्योगों के लिये उपयोगी बने रहते हैं।

प्राकृतिक रूप—हीरा घनाकार आठ तथा बारह पहलों का मिलता है। भारतीय हीरा आठ तिकोने पहलों का और ब्राजीली हीरा समांतर असमचतुर्भुजीय (चौकोर) बारह पहलों वाला मिलता है। तिकोने पहलों पर तिकोने ही, जो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता से ही दीख पड़ें इतने बारीक, निशान या गढ़े होते हैं—जिनके किनारे और शिखर उस पहलू के किनारों व शिखर से उल्टी दिशा में होते हैं कि जिस पर ये स्थित होते हैं। चौकोर पहलों के लम्बे कर्ण के समांतर पट्टियां या धारियां होती हैं। फिर ये पहल कुछ-कुछ ऊपर को उभरे (उन्नतोदर) तथा इनके किनारे पैने न होकर, कुछ-कुछ गोल होते हैं। ये सारी विशेषताएँ कार्बन से हीरा बनते समय पड़े भारी दबाव का परिणाम प्रतीत होती हैं।

कुछ हीरों को छोड़कर प्राय: सभी हीरे बिजली की धारा को अपने भीतर से नहीं गुजरने देते परन्तु ताप को आसानी से गुजरने देते हैं—इसीलिये छूने में हीरे ठंढे लगते हैं।

सबसे अधिक कठोर होते हुए भी हीरे भंगुर, जल्दी टूट जाने वाले होते हैं। फ़र्श पर गिरने से हीरा यों ही चोट खा जाता है। कहते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका में जब पत्थर का एक टुकड़ा ऐसा मिला कि जिसके हीरा होने की सम्भावना हुई तो उसको जांचने के लिये लुहार को दिया गया। उसने आव देखा न ताव झट अपने घन पर रख कर भारी हथौड़ा उस पर दे मारा और सिद्धकर दिया कि यह पत्थर हीरा नहीं है! इस प्रकार अनजाने ही एक हीरा हाथ से जाता रहा!

फिर यह कठोरता अलग-अलग स्थानों के हीरों में कम-अधिक होती है। बोर्नियो तथा आस्ट्रेलिया के हीरे अफ्रीकी हीरों से अधिक कठोर होते हैं। अफ्रीका से कुछ हीरे ऐसे भी मिले हैं कि जो हवा लगने पर कठोर हुए। फिर एक हीरे में कहीं कम कठोरता और कहीं अधिक कठोरता होती है। जैसा कि हम पहले लिख आये हैं कठोरता का अर्थ इतना ही है कि हीरा किसी ज्ञात वस्तु से **खुरचा नहीं जा सकता**। परन्तु यह अपने पहलों के **समान्तर तलों पर सरलता से चिर जाता है**। अपने इस गुण के कारण ही इसको काट लेना सम्भव हुआ है।

रंग—आभूषण के रूप में काम आने वाला हीरा पारदर्शक तथा लगभग रंग-रहित होता है। यह एक प्रकार से दोषरहित होता है। थोड़ा सा नीलापन लिये हुआ परन्तु रंगहीन और पारदर्शक हीरा सबसे अधिक मूल्य का आँका जाता है। पीली आभा-वाले हीरे कम आबदार होते हैं। हरे आराग वाले भी हीरे मिलते हैं। भूरे, बादामी रंग के हीरे दक्षिणी अफ्रीका से मिलते हैं।

माणिक्य तथा नीलम के सरीखे चटकीले रंग के हीरे नहीं मिलते। प्राचीन ग्रन्थों में रंगों की दृष्टि से हीरे आठ प्रकार के बताये हैं— १ अत्यन्त सफेद २ कमलासन ३ वनस्पति के समान हरे रंग के ४. गेंदे के समान वासन्ती रंग के। ५ नीलकंठ के कंठ-सदृश नीले ६ श्यामल ७ तेलिया और ८ पीत हरा।

उपयोगिता की दृष्टि से—जवाहरातों की श्रेणी में न आने वाले हीरे **औद्योगिक हीरे** कहलाते हैं। इनमें से कुछ स्वच्छ, पारदर्शक तथा शेष अपारदर्शक होते हैं। सामान्यतया इन का रंग आकर्षक नहीं होता। रत्नों की कोटि के हीरों को चिरकालीन प्रयोग के बाद भी बदलना नहीं पड़ता परन्तु औद्योगिक हीरे प्रयोग से घिस कर नष्ट हो जाते हैं और उन्हें बदलना पड़ता है। **बोर्ट** (Boart) कुछ-कुछ भूरा और **कार्बनैडो** (Carbonado) सर्वथा काला हीरा होता है। ये दोनों औद्योगिक कामों में आते हैं।

आजकल खानों में से जितने हीरे निकाले जाते हैं उनमें औद्योगिक हीरों की मात्रा ही बहुत अधिक होती है।

प्राप्तिस्थान—भारत में हीरा अति प्राचीन युग से ज्ञात है। प्राचीन ग्रन्थों में इसके औषधीय तथा ज्योतिष सम्बन्धी गुणों का वर्णन मिलता है। भारत में हीरों की प्रसिद्ध खानें दक्षिण में थीं— मद्रास प्रदेश को पिनेर नदी से लेकर बुन्देलखण्ड की सोन तथा खान नदियों तक से उस समय हीरे मिलते थे। यहाँ नदियों की रेत तथा कंकड़ों से हीरा खोज निकाला जाता था। गोलकुण्डा हीरों का बाजार था। **आजकल** मद्रास, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा गुजरात की खानों से २००० कैरेट से ४००० कैरट हीरे वार्षिक निकाले जाते हैं। बोर्नियो में भी हीरे की खानें प्राचीन काल में विद्यमान थीं।

ब्राजील में हीरे की खानें १७२५ ई० में चालू की गयीं। परन्तु

उस समय वहां भी पुर्तगाली सरकार स्वत्वाधिकार के रूप में इतना धन ले लेती थी कि हीरा निकालने का उद्योग पनप नहीं सका। सन् १८३४ में स्वतंत्र होने पर यहाँ यह उद्योग फिर चमका। ब्राज़ील में हीरे की खानें मीना जेरी तथा बाहिया प्रदेशों में हैं— हीरे की कार्बनेडो किस्म तो लगभग यहीं पर ही मिलती है।

१८६७ में दक्षिण अफ्रीका में हीरों की उपस्थिति का पता लगा। आज तो दक्षिण अफ्रीका ही हीरों का मुख्यतम उत्पादक देश है। यहां का किम्बरली नगर हीरों के उत्पादन का सबसे बड़ा केन्द्र है। अफ्रीका के दूसरे भागों—रोडेशिया, गोल्डकोस्ट, बैल्जियन कांगों आदि स्थानों से भी हीरे मिलते हैं। आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स से हीरे मिलते हैं, परन्तु उत्पादन बहुत कम है। दक्षिणी अमेरिका से भी हीरे निकलते हैं। विश्वभर में एक वर्ष में जितने हीरे निकाले जाते हैं—उनका ९५ प्रतिशत भाग अब दक्षिणी अफ्रीका से निकलता है।

सन् १९६७ ई० में हीरे का विश्व उत्पादन का कुल योग ४२३८८००० कैरेट हुआ था; इसमें से ३३२९५००० कैरेट औद्योगिक तथा ९०९३००० कैरेट रत्न-हीरे थे। रत्न-हीरों का ८१.९ प्रतिशत भाग दक्षिण अफ्रीका से निकाला गया था। भारत से केवल ७००० कैरेट हीरे मिल सके थे।

आजकल हीरे के उत्पादन का नियन्त्रण लगभग पूरे रूप में De Beers Consolidated Mines—नाम की कम्पनी के हाथ में ही है; यह कम्पनी कुछ खानें तो स्वयं चलाती है और शेष खानों के हीरे भी यही ले लेती है।

आजकल लन्दन से ही विश्वभर के हीरों के व्यापारी अनघड़ हीरे खरीदते हैं। **भारत और संयुक्त राष्ट्र अमरीका** हीरों के सबसे बड़े खरीदार हैं। अमरीका में इनका लेन देन इतना बढ़ गया है

कि वहाँ हीरा काटने वालों की संख्या बहुत बढ़ गयी है।

विश्व के प्रसिद्ध हीरे—जिन हीरों ने विश्व में नाम कमाया है उनकी संख्या भी कम नहीं है। इस छोटी सी पुस्तक में उनके विस्तृत इतिहास तो नहीं दिया जा सकता—परन्तु कुछ सामान्य परिचय देना कम रोचक नहीं होगा।

कोहेनूर हीरा—१४ वीं सदी में भारत के मुगल बादशाहों की सम्पत्ति था। उस समय इसका भार १८६.१ कैरेट था। १७३९ में इसको नादिरशाह अपनी लूट में दिल्ली से ईरान ले गया। उसके मरने पर यह फिर भारत में आ गया और क्रमशः कई भारतीय राजाओं के पास रहा। अन्त में महाराजा रणजीतसिंह के पास रहा और उसके उत्तराधिकारियों से ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ले लिया। कम्पनी ने इसको महारानी विक्टोरिया को भेंट कर दिया। १८६२ में इसको पुनः काटा गया और तब से इसका भार १०६.१ कैरेट है, जो ब्रिटिश शाही परिवार की निजी सम्पत्ति है।

पिट या रीजेंट हीरा—मूल रूप में ४१० कैरेट का यह प्रसिद्ध हीरा हैदराबाद दक्षिण की गोलकुण्डा के समीप स्थित एक खान से मिला था। पहले पहल इसको उस समय मद्रास के गवर्नर पिटने खरीदा। ज़्वलन्त काट के पश्चात् इसका भार १३६.९ कैरट रह गया। काटने में २ वर्ष तथा ५००० पौंड लगे थे। १९१७ में इसको फ्रांस के रीजेन्ट ने खरीद लिया। अब यह लूवर की गैलरी में रखा है। इसकी कीमत ४८०००० पौंड आंकी गयी है।

महान् मुगल—यह हीरा ज्ञात भारतीय हीरों में सबसे बड़ा है। सन् १६५० में कौलूर की खानों से मिलाथा। मूल तोल ७८७.५ कैरट था—गुलाबी काट के पश्चात् २४० कैरट रह गया था। १६६४ में इसे औरंगजेब के खजाने में देखा गया था। अब इसका पता नहीं है कि कहां है।

ओर्लिफ हीरा भी एक ऐतिहासिक हीरा है। यह बड़ा रत्न कभी रूस के राजदंड के ऊपरी सिरे पर लगा हुआ था। यह गुलाबी काट का भारतीय हीरा है। इसका भार लगभग १९३ कैरेट है। किसी फ्रांसीसी सिपाही ने इसको मैसूर के एक मन्दिर की मूर्ति की आँख से चुरा लिया था। उससे क्रमश: चलता-चलता यह राजकुमार ओर्लिफ़ के हाथ ९०,००० पौंड में लगा था।

कुलीनन हीरा—सन् १९०५ में दक्षिण अफ्रीका की प्रीमियर खान से निकला १०×६.५×५ सैंटीमीटर आयतन का ३१०६ मैट्रिक कैरेट का यह हीरा सबसे भारी हीरा है। १९०७ में यह इंग्लैंड के राजा एडवर्ड सप्तम को भेंट किया गया। इसके दोष हटाने के लिये इसके पहले दो टुकड़े किये गये :—इनमें से पहला ५३०.०२ कैरट का 'अफ्रीका का तारा' कहलाया। कुलीनन द्वितीय समायत आकार का ३१७.४ कैरट तोल का है।

होप हीरा—रंगीन हीरों में सबसे बड़ा हीरा है। इसका भार ४४.५ कैरट है। इसका रंग हरापन लिये हुआ नीला है। सन् १६४२ में टैबर्नियर ने भारत से इसे प्राप्त किया था। फ्रांसीसी राजमुकुट से होता हुआ यह अन्त में लन्दन के एक धनी व्यापारी होप के संग्रहालय में स्थान पा गया। १८६७ में उसका यह संग्रह बिका ; उस समय यह अमरीका चला गया। वहाँ से भी एक भारतीय के हाथ में गया परन्तु अब एक अमरीकन महिला की सम्पत्ति है। कहते हैं कि यह हीरा अपने मालिक के लिये अशुभ रहता आया है।

रत्न-हीरे के तीन प्रकार—गरुड़ पुराण आदि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अनुसार, रत्न-हीरा तीन प्रकार का होता है—अर्थात् नर, नारी और नपुंसक हीरा। **नर हीरा** अत्यन्त चमकीला और इन्द्र धनुषी लौ देता है। जल में डालने पर भी उसकी चमक ऊपर

तैर आती है। यह रेखाओं और बिन्दुओं से रहित अष्ट कोणी तथा श्वेत रंग का होता है। **नारी हीरा** चपटा कुछ-कुछ गोल और आयताकार होता है। यह छः कोण होता है, इसमें बिन्दु तथा रेखाएँ भी होती हैं। **नपुंसक** हीरा गोल होता है—उसमें कोण तथा पैने किनारे नहीं होते तथा कुछ अधिक भारी होता है। इनमें से नर हीरा सभी के लिये उपयोगी है। फिर श्वेत हीरे को ब्राह्मण, फिटकरी के रंग के लाल हीरे को क्षत्रिय, पीले रंग के हीरे को वैश्य और काले रंग के हीरे को शूद्रवर्णी हीरा कहते हैं।

शुभ तथा उत्कृष्ट हीरा—जो हीरा बहुत हलकी नीली झाँई के साथ सफेद हो; अथवा नीली और लाल किरण देता हुआ सफेद हो; काले रंग के बिन्दुओं से रहित हो वह शुभ तथा उत्कृष्ट माना गया है। एक अन्य ग्रन्थ के अनुसार, शंख के समान सफेद अथवा बिल्लौर के समान चमकता, चन्द्र के समान रोचक, चिकना हीरा सर्वोत्तम वर्ण का हीरा होता है। चारों ओर लाल किरणें फैंकता हुआ सफेद हो, अथवा लाल-पीला सफेद अथवा खरगोश की आँख के रंग का हो वह दूसरे दर्जे का (क्षत्रिय) होता है। जो पिलाई लिये हुआ सफेद हो, साण पर चढ़ा कर तेज करके तेल या पानी से बुझाई हुई तलवार की-सी चमक वाला हीरा तीसरें दर्जे का (वैश्य) हीरा होता है। काली झांईं वाला सफेद हीरा शूद्रवर्ण का माना जाता है। वैसे यह भी असली हीरा होता है।

हीरे के दोष—प्राचीन ग्रन्थों तथा अर्वाचीन जौहरियों के अनुसार हीरें में निम्नलिखित बातें होना उसे ऐबदार बनाता है। इन के कारण उसका मूल्य घट जाता है :—

१. **छींटा या बिन्दु**—हीरे पर जल के समान बिन्दु या छींटा होना उसका ऐब है। यह छींटा लाल हो तो सर्वथा त्याज्य है; छींटा काले और सफेद का रंग का भी हीरे को ऐबदार बना देता है।

२. **काक पद**—कौवे के पैर के समान काले बिन्दु होना 'काक पद' दोष कहलाता है; ऐसे हीरे को **मृत्युदायी** बताया है।

३. **'यव' (जौ) दोष**—जौ के आकार के चार रंगों के बिन्दु हो सकते हैं—श्वेत, लाल, पीला और काला। जौ विन्दु श्वेत हों तो वह हीरा उत्तम माना गया है। शेष अधम हैं।

४. **मलदोष**—हीरे की धार, कोना तथा बीच में—तीन स्थानों पर मल हो सकता है—मल रहना मलदोष है। यह भी अशुभ है।

५. **रेखा-दोष**—हीरे पर चार प्रकार की रेखाएँ हो सकती हैं—(१) बाँये भाग से जाने वाली (२) दक्षिण भाग से जाने वाली (३) रेखा को पार करने वाली और (४) रेखा को पार-करके ऊपर को जाने वाली रेखा। इनमें से वाम भाग से जाने वाली रेखा उत्तम तथा शुभ मानी जाती है। इनके अतिरिक्त, तेलियापन, जर्दी, भूरापन, खड्डा, चीर, चमक न होना और अधिक कड़ापन भी अवगुण हैं। जो हीरा सामान्य हीरे से अधिक कठोर हो उस पर अनीक बनाने में अधिक कठिनाई होती है।

बनावटी हीरे—गरुडपुराण तक में कहा है कि हीरे की बढ़ी-चढ़ी कीमत और उसका आदर देखकर चतुर-चालाक लोग नकली हीरे बनाने का यत्न करते हैं। गरुड़पुराण के ६८ वें अध्याय के अनुसार—

> अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च।
> वैदूर्यस्फटिकाभ्याँच काचैश्च पृथग्विधैः।
> प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशलाः जना॥

अर्थात् लोहा, पुखराज, गोमेद, वैदूर्य, स्फटिक तथा काच से नकली हीरे हुशियार लोग बना लेते हैं; इसलिये ग्राहक को भली-भांति परीक्षा करके असली हीरा खरीदना चाहिये।

हम पहले बता आये हैं कि किसी रत्न के कृत्रिम अथवा मनुष्य-

निर्मित रत्न चार प्रकार के होते हैं, १ संश्लिष्ट २ पुनर्निर्मित ३ अनुकृत और ४ द्विक अथवा त्रिक।

व्यापार की दृष्टि से लाभदायक **संश्लिष्ट** हीरा अभी तक नहीं बनाया जा सका है। परन्तु इस दिशा में वैज्ञानिकों का यत्न लगातार चालू है। पहले पहल फरवरी १९५५ में जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी ने १ लाख वायुमंडलों के दबाव से अधिक दबाव तथा २७६० डिग्री शतांश ताप पर ग्रैफाइट के कणों से संश्लिष्ट हीरा बनाया। कइयों का कथन है कि इस कम्पनी ने **खांड** से ऐसे हीरे बनाये हैं। कुछ भी हो, अभी तक ये हीरे केवल औद्योगिक कार्यों के लिये उपयोगी बन पाये हैं—'रत्न' नहीं बन सके हैं। कहते है कि रत्न हीरे बन तो सकते हैं परन्तु उनको बनाने का ख़र्च अत्यधिक है।

रूस में हीरा बनाने की मशीन

कहते हैं कि अब रूसी वैज्ञानिकों ने अधिक खर्च की इस रुकावट को दूर कर लिया है। अक्तूबर १९७० के 'नवनीत' (हिन्दी मासिक, बम्बई) के पृष्ठ ३९ पर प्रकाशित लेख के अनुसार—'**लोहे का एक स्टोव जैसा दीखने वाला यंत्र, पिरामिड जैसी चोटी, चौकोर आधार, भीतर जैनन नामक एक गैसका शक्तिशाली स्रोत।**' यह है नकली हीरा तय्यार करने की मशीन। इसमें 'यह जो सामने छोटा-सा छिद्र है, इसमें जरा झांकिये। **लाल-लाल छोटा-सा दाना जो आप अब देख रहे हैं—वह हीरा तय्यार हो रहा है।**"

कुछ भी हो, अभीतक संश्लिष्ट अथवा रासायनिक विधि से से तय्यार हीरे असली हीरे की बराबरी में नहीं खड़े हो सके हैं। अतएव **जौहरी के सामने इनकी कोई समस्या नहीं है।**

असली रत्न के छोटे-छोटे टुकड़ों को गलाकर आपस में जोड़कर निक्षेप रूप में जमाकर जो रत्न बनाये जाते हैं उन्हें 'पुनर्निर्मित'

रत्न कहते हैं। अभी तक हीरा 'पुनर्निमित, भी नहीं किया जा सका है।

हां, संश्लिष्ट रूटाइल (rutile) तथा संश्लिष्ट नीलमों से द्विक हीरे बनाए गये हैं।

परीक्षा और पहचान—हीरा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रंग रहित अथवा लगभग रंगरहित, तथा पारदर्शक रत्न है। हीरे का भ्रम डालने वाले अथवा उसके स्थान पर नकली हीरे के रूप में चलाये जाने वाले मुख्य-मुख्य रत्न निम्नलिखित होने सम्भव हैं— (१) संश्लिष्ट रूटाइल (२) स्ट्रौंशियम टिटेनेट, असली तथा संश्लिष्ट गोमेद; प्राकृतिक रंग रहित नीलम, बिल्लौर और कांच से निर्मित अनुकृतियां आदि।

हमने ऊपर गरुड़पुराण का जो श्लोक उद्धृत किया है तथा फेरुकृत रत्नपरीक्षा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हीरे की परीक्षा की समस्या काँच और स्फटिक के अनुकृत रत्नों तथा गोमेद, पुखराज तथा बैरूंज आदि कुछ प्राकृतिक रत्नों के कारण उपस्थित होती है।

आमतौर पर जौहरियों का तो यही ख्याल रहता है कि हीरे की केवल मात्र **चमक** को ही देखकर असली हीरे को पहचान लेना कठिन नहीं होता। फिर भी जौहरी कितनी बार धोखा खा जाते हैं। इसलिये सच्चे हीरे की पहचान के लिये कुछ सूचनाओं का उल्लेख करना उचित होगा।

(१) हीरे की सब से अधिक विशेष पहचान चमकीले गोल 'मनोहारी' आकृति के हीरक-खण्डों की मेखला के उस तल पर कि जिस पर पालिश (प्रमार्जन) नहीं हुआ है, सतह का **अद्वितीय तन्तुविन्यास अथवा रेशों की बनावट** है। हीरे को गोल करते समय

खराद के प्रयोग से हीरे की सतही सूरत ऐसी बन जाती है कि जैसी दूसरे किसी रत्न की नहीं होती।

(२) काटे-संवारे हीरक- खण्ड की मेखला के ऊपर अथवा इस के समीप हीरे की मूल त्वचा तथा कुछ 'प्राकृतिक' अंश भी बचे रह जाते हैं। इन प्राकृतिक अंशों पर गढे अथवा तिकोनी आकृतियां दिखायी देती हैं जो क्रमशः हीरों के समांतर असम चतुर्भुज और त्रिभुजाकार पहलों पर पायी जाती हैं। ये निशान भी किसी नकली हीरे के पहलों पर नहीं दिखायी देते।

(३) अच्छे काट के हीरे की चमक अपनी विशेष दमक होती है। इसका नाम 'हीरक द्युति' है। ऐसी दमक और किसी रत्न में नहीं पायी जाती। **गोमेद** में दमक पर्याप्त होती है। परन्तु ध्यान से देखने से पता लग जाता है कि इसको दमक हीरक-चमक न होकर विरोजा जैसी चमक है।

(४) कठोरता की परीक्षा, जौहरी लोगों में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही परीक्षाविधि है। जैसा कि सबको मालूम है, हीरा सबसे अधिक कठोर खनिज है—मनुष्य ने कड़े पदार्थों को घिसने के लिये जो दो कृत्रिम पदार्थ बनाये है, हीरे के सिवा, उन्हीं दो से माणिक्य और नीलम पर खरौंच पड़ सकती है। बस तो कृत्रिम नीलम (असली को क्षति ग्रस्त होने क्यों दिया जाय ?) के एक टुकड़े को उस हीरक-खण्ड़ की मेखला की नोक से खरोंचिये जिसकी आप परीक्षा कर रहे हैं। यदि नीलम पर हलकी सी भी खरौंच पड़ जाये तो आप जिस खण्ड की परीक्षा कर रहे हैं वह असली हीरा है—अन्यथा नहीं।

परन्तु सावधान—बहुत जोर न लगाइये, हीरा कठोर होते हुए भी भंगुर होता है—कहीं नोक न टूट जाय।

(५) हम पहले बता आये हैं कि हीरक खण्ड में गया प्रकाश

लगभग पूरा-का-पूरा भीतर से लौट आता है—आप जिस रत्न खण्ड की परीक्षा कर रहे हैं उसके पीछे अंगुली रख कर उसको सामने से देखिये—अंगुली दिखायी नहीं देगी। खिड़की में एक छिद्र के सामने रत्नखण्ड को रखिये; हीरक खण्ड में से यह प्रकाश आप की ओर न आकर दूसरी ओर ही लौट जायेगा; आप को दिखायी नहीं देगा।

(६) उच्च अपवर्तन के कारण ज्वलन्त काट हीरे की चोटी पर वाले फलक से इन्द्रधनुष के-से रंगों की चमक दिखायी देती है। यह दमक हीरे में सब रत्नों से अधिक पायी जाती है। रंग हीन रत्नों में से गोमेद में ही दमक पायी जाती है।

परन्तु **श्वेत गोमेद** में दुहरा वर्तन होता हैं—इसलिये इसके पृष्ठभाग के अनीक दुहरे दिखायी देते हैं। फिर कठोरता के परीक्षण से तो गोमेद का भ्रम मिट ही जाता है।

(८) सीसे युक्त कांच के बने नकली हीरे अब बहुत आने लगे हैं; परन्तु हीरों का सच्चा पारखी उनसे धोखा नहीं खा सकता। कांच की द्युति (चमक) हीरे की चमक से भिन्न है ही, काँच के नकली हीरों के भीतर बुलबुले होते हैं। फिर वह अत्यन्त नरम होता है और छूने में हीरे की अपेक्षा गरम लगता है।

(९) इनके अतिरिक्त रत्नों के रवों की आकृति, उनके वर्तनांक आदि में अन्तर होते हैं। जाँच करने की इस प्रकार की सूक्ष्म तथा यंत्रसाध्य विधियों का वर्णन हम अधिक विस्तृत पुस्तक के लिये छोड़ते हैं।

सच्चे हीरे को घी, दूध या गरम जल में डालने पर उनका ठंढा हो जाना; सूर्य के सम्मुख रखने पर उसमें से इन्द्रधनुषी झिलमिल दिखायी देना—आदि परीक्षायें इन्हीं वैज्ञानिक विधियों के अन्तर्गत हैं—हमारे पाठक इन्हें भली-भाँति समझ सकते हैं।

रोगों में प्रयोग—भावप्रकाश में लिखा है कि हीरे की भस्म शरीर को पुष्ट करती है, बल तथा वीर्य देती हैं, सुख कारक है, एक प्रकार से सभी रोगों की नाशक है। हीरे की पिष्टी कभी नहीं खानी चाहिये। शुद्ध रीति से बनायी हुई भस्म ही का प्रयोग करना चाहिये। हृदय रोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु रोग, नपुंसकता, सूखा आदि रोगों में दी जाती है।

रत्न चिकित्सा विधि' से हीरे की गोलियों का प्रयोग इन रोगों में किया जाना चाहिये—रक्तातिसार, अंधापन, स्वरभंग. मोतिया-बिन्द, रेंगता हुआ पक्षाधात, कष्टदायक ऋतु, भगन्दर, हिस्टीरिया, श्वेत प्रदर, फेफड़े के रोग, फुफ्फुस प्रदाह।

दैवी शक्ति—भूत-प्रेतादि की व्याधा तथा विषभय के निवारणार्थ हीरे का धारण करना बताया गया है। कामक्रीडा में अशक्त व्यक्ति को हीरा पहिनना चाहिये। ज्योतिष के अनुसार हीरा कौन कौन व्यक्ति धारण करे—इसके निर्णय के लिये इस पुस्तक का दूसरा भाग देखिये (पृष्ठ सं० ५३–६३)

शुक्र ग्रह के प्रभाव में अर्थात् जब सूर्य वृष राशि (१५ मई से १४ जून तक) में और तुला (libra) राशि (१५ अ० से १४ नवम्बर) में हो—उस समय जन्मे व्यक्तियों को हीरा पहिनना चाहिये। इसको निम्नलिखित मंत्र के जाप के साथ धारण करना लिखा है—ऊँ **अन्नात् परिस्नुतो रस ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥**

हीरे का वदल—गोमेद (zircon) है। चाँदी में जडवा कर मोती भी, हीरे के स्थान पर पहिना जा सकता है।

लोग मानते आये हैं कि हीरा धारण करने से परस्पर सद्भावना बढ़ती है, क्रोध शांत होता है। धारणा शक्ति बढ़ती है। विवाह

सम्बन्ध स्थायी बनते हैं। यूरोप तथा अन्य पश्चिमी देशों में हीरे की अंगूठियों का आदान-प्रदान इसी प्रयोजन से खूब प्रचलित है। वाराही संहिता में लिखा है कि पुत्र की इच्छा रखने वाली स्त्री को साधारण हीरा कभी न पहिनना चाहिये, सिंघाड़ा, त्रिपुट धान्य या श्रोणि के आकार का हीरा ही ऐसी स्त्रियों के लिये शुभ है।

शनिरत्न—नीलम

: ७ :

नीलम के दो भेद : बढ़िया नीलम की विशेषताएँ : असली नकली की पहचान का रोचक तरीका : शीघ्र प्रभावी रत्न : गंज और रूसी का इलाज : आधियों का शमक रत्न।

विविधनाम : संस्कृत—नील, शौरिरत्न, इन्द्रनील, तृणग्राही, नीलमणि आदि, **हिन्दी-पंजाबी**—नीलम ; **उर्दू-फारसी**—नीलम, याकूत कबूद; अंग्रेजी—Sapphire.

भौतिक गुण—कठोरता–९, आ० ध०–४.०३, वर्तनांक—१.७६ १.७७; दुहरावर्तन—०.००८, द्विवर्णिता अतिस्पष्ट; बिना सूक्ष्मदर्शक के भी दृश्य; भंगुर; अपकिरणन हीरे की अपेक्षाकम होता है, इसीलिये दमक तथा जाज्वल्यता हीरे से कम होती है और इस आधार पर भी श्वेत नीलम तथा हीरे में अन्तर बताया जा सकता है।

कुरुन्दम समूह—माणिक्य की तरह नीलम भी कुरुन्दम समूह का रत्न है। वास्तव में तो लाल कुरुन्दम को तो 'माणिक्य' पुकारते हैं—इसके अतिरिक्त अन्य सभी रंगों के कुरुन्दम वर्ग के रत्नों को नीलम कहते हैं—जैसे, श्वेत नीलम, हरा नीलम, बैंजनी नीलम आदि। परन्तु 'नीलम' नाम विशेषतया आसमानी, चमकीले, गहरे

नीले, मखमली नीले और भुट्टे के फूल के रंग के नीलम को दिया जाता है।

प्राप्ति स्थान—(१) **काश्मीर** (भारत) का नीलम सर्वश्रेष्ठ होता है—इसका रंग मोर की गर्दन के रंग का होता है। इसमें यदि एक बिन्दु रंग भी हो तो वह सम्पूर्ण नग को रंगीन रखता है। परन्तु यदि डंक, पोल व दुरंगेपन से रहित मिले तभी उसका नग सुन्दर बनता है। फिर इस पर विजातीय पदार्थ भी चिपका रहता है। (२) **बर्मा** के नीलम में हरापन कम तथा सुन्दर नीला रंग होता है। विजातीय पदार्थ चिपका न होने के कारण नग बनाने में सुविधा रहती है। (३) श्री **लंका** का नीलम ऊपर लिखे दोनों नीलमों से घटिया दर्जे का होता है। इसमें लाल रंग की आभा होती है—श्याम आभा भी बहुत होती है। (४) **स्याम** देश के नीलम में कृष्णवर्ण की आभा तथा हरापन अधिक होता है। रंग गहरा होने के कारण यह काला दिखायी देता है। इसमें कठोरता व चिकनाई अधिक होती है। (५) **सलेम** (दक्षिण भारत) के नीलम में हरापन स्याम के नीलम से अधिक होता है। पीला और नीला रंग मिश्रित रहता है। (६) **आस्ट्रेलिया** के नीलम गहरे नीले रंग के होते हैं। (७) **मोंटाना** (अमरीका) केनीलम की चमक धातु की-सी चमक होती है। **रोडेशिया** (अफ्रीका), तथा **ओयत्स्क मीस्क** (रूस) में भी नीलम मिलते है--पर घटिया दर्जे के होते हैं।

पुखराज, माणिक्य तथा नीलम कभी-कभी एक ही क्षेत्र में पाये जाते हैं। इसलिये इनके क्रमशः श्वेत, लाल और नीले रंगों का एक दूसरे में मिश्रण हो जाता है। हां, इनकी कठोरता में अन्तर होता है। पुखराज से माणिक्य और माणिक्य से, नीलम अधिक कठोर होता है।

कुछ ऐतिहासिक नीलम—सुन्दरतम नीलम रत्न भारत के

काश्मीर राज्य से मिलते हैं। नीलम की खानें वहाँ जांसकर पहाड़ी में १४६४० फुट की ऊँचाई पर सूमजाम नामक गांव के समीप स्थित हैं। सम्भवतः बड़े-बड़े ज्ञात नीलम भारत की खानों से ही मिले हैं। रीवां राज्य के खजाने में जो नीलम १८२७ में विद्यमान था, वह सबसे बड़ा और तोल में ९५१ कैरट था। जार्डीन डेस प्लांटीन के संग्रह में दो सुन्दर नीलम हैं, इनमें से एक रास्पली नाम का, बहुत ही सुन्दर और दोष रहित नीलम १३२ कैरेट तोल का है। दूसरा नीलम २ इंच लम्बा और १.५० इंच चौड़ा है, डेवन शायर के डयूक के पास एक सुन्दर ज्वलन्त काट का नीलम १०० कैरट तोल का है। ब्रिटिश म्यूजियम में खनिज विभाग में सोने की पिन पर रखी हुई भगवान् बुद्ध की मूर्ति एक ही नीलम रत्न को काट कर बनायी गयी है। सबसे बड़ा लगभग १३२ कैरेट तोल का भूरे रंग का नीलम पेरिस के खनिज संग्राहलय में है। लकड़ी के चम्मच बेचने वाले किसी व्यक्ति को यह बंगाल से मिला था। कभी स्काच रानी मेरी के पति डार्नले के अधिकार में रहा एक हृदय के आकार का नीलम अब शाही ताज में है; यह १५७५ ई० का बताया जाता है। दो बड़े नीलम एक पादरी ने नैपोलियन को भेंट किये थे। ये फिर लुई नैपलियन तृतीय की सम्पत्ति बने।

दो भेद—भारतीय ग्रन्थों के अनुसार नीलम दो प्रकार का होता है—(१) जलनील और (२) इन्द्र नील। जिस नीलम के भीतर सफेदी हो और चारों ओर नीलिमा, लघु हो, वह **जलनील** कहाता है और जिस नीलम के भीतर श्याम आभा हो, बाहर नीलिमा हो, अपेक्षया भारी हो वह **इन्द्रनील** कहलाता है। वस्तुतः तो इसका रंग नीले और लाल का मिला हुआ अर्थात् बैंगनी होता है।

श्रेष्ठ नीलम—वह है कि जिसमें सात विशेषताएँ हों—१. दूसरे द्रव्य की परछाई को न लेकर अपनी चमक से उसको चमकाने

वाला हो अथवा एक ही रंग का दिखायी दे ; २. दड़कदार हो, ३. चिकना हो; ४. पारदर्शक चमक का हो ; ५. जिसका शरीर गठा हुआ हो ; ६, छूने में मुलायम लगे और जिसके भीतर से किरणें फूटती प्रतीत हों नीलम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण की क्रमशः श्वेत, लाल, पीली और काले रंग की छाया होती है।

पूर्णिमा के दिन खूब फैली हुई चाँदनी में खड़ी हुई गौरवर्ण की सुन्दर स्त्री के हाथ में स्वच्छ दूध से भरा कटोरा दे और उस पात्र पर नीलम का प्रकाश डाले ; यदि नीलम अपने प्रकाश से दूध, दूध के पात्र और सुन्दरी आदि पर तत्काल नीलिमा उत्पन्न कर दे तो नीलम उत्तम जाति का समझना चाहिये उत्तम नीलम की एक विशेषता यह भी है कि तिनका उसके समीप लाने पर, उससे चिपक जाता है।

नकली नीलम—माणिक्य के समान नीलम के स्थान पर भी संश्लिष्ट नीलम, नीले रंग की संश्लिष्ट कंटकिजमणि, तथा काँच की अनुकृतियों का प्रयोग किया जाता है।

माणिक्य के प्रकरण में असली-नकली माणिक्य की पहचान के जो तरीके दिये गये हैं—वही यहां भी प्रयुक्त करने चाहियें। कृत्रिम नीलम में रंगों की मुड़ी हुई (वक्र) पट्टिकायें होती हैं—असली नीलम में ये धारियां सीधी होती हैं। श्री लंका के नीलम में 'पर' पाये जाते हैं।

रोगों में प्रयोग—आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के अनुसार, नीलम तिक्त रसका, और कफ, पित्त तथा वायु के उपद्रवों को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह दीपन, हृद्य, वृष्य, बल्य और रसायन है। मस्तिष्क की दुर्बलता, हृदय रोग, क्षय, खांसी, दमा तथा कुष्ठ रोगों में इसका प्रयोग करते हैं।

रत्न चिकित्सा पद्धति के अनुसार बनायी हुई नीलमणि की

गोलियों का प्रयोग—बैंगनी रंग की कमी से उत्पन्न रोगों में किया जा सकता है। गंज, मूत्राशय, रूसी, जलोदर, खुजली, मृगी, वृक्क रोग, मस्तिष्क झिल्ली-प्रदाह, अधकपाली का दर्द, कर्णमूलप्रदाह, स्नायुशूल, संधिवात, शियाटिका (कटिशूल), रसौली आदि ऐसे रोग हैं।

दैवी शक्ति—ज्योतिष के अनुसार नीलम के धारण के सम्बन्ध में इसी पुस्तक के पृष्ठ ५३ से ६८ तक देखिये। कहते हैं कि दिल पर धारण करने से यह उसको शक्ति प्रदान करता है। बौद्धों का विचार है कि इस के धारण करने से मन प्रशान्त होता है, बुरे विचार जाते रहते हैं। शनि के प्रभावाधीन व्यक्ति अर्थात् १५जनवरी से १४ फरवरी तक अवधि में, जबकि सूर्य कुम्भ राशि में रहता है, जन्मे व्यक्ति इसको धारण करते हैं। कहते हैं कि **यह रत्न धारण करने के पश्चात् कुछ ही घंटों में अपना प्रभाव दिखाने लगता है।** धारण करने के बाद यदि किसी को बुरे स्वप्न आने लगें या अन्य कोई अनिष्ट हो गया हो तो नीलम उतार देना चाहिये।

नीलम धारण करने का मंत्र इस प्रकार है—"**ॐ! शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः।** नीलम पाँच रत्ती का या सात रत्ती का लेना चाहिये। इसका बदल **पन्ना** भी है।

राहुरत्न—गोमेद

: ८ :

तीन किस्म के गोमेद ; हीरे जैसी चमक-दमक और सजधज का रत्न; जांच के प्राचीन तथा नवीन तरीके चर्मरोगों में विशेष लाभदायक ; हृदय तथा बुद्धि का भी बल वर्धक।

विविधनाम—संस्कृत-गोमेद, गोमेदक, पिंग स्फटिक, बाहुरत्न,

हिन्दी-पंजाबी—गोमेद; **उर्दू-फारसी**—जरकूनिया या जारगुन ; **अरबी**—जारकुन (सिंदूरी), **अंग्रेजी**—Zircon,

भौतिक गुण—कठोरता–७.५ तक। आ० घ०–४.६५ से ४.७१ तक। पारदर्शक, पारभासक तथा अपारदर्शक भी। हीरक द्युति। वर्तनांक—१.९३–१.९८; दुहरा वर्तन ०.०६; अपकिरणन ०.०४८ (काफ़ी अधिक)

गोमेद जिर्कोनियम का सिलिकेट लवण है ; इसमें थोड़ी मात्रा में दूसरी दुर्लभ मृत्तिकामें भी पायी जाती हैं। यह सबसे अधिक मनोरंजक रत्न है। लगभग सभी रंगों में मिलता है। यह हरे, सुनहरे पीले और गहरे लाल रंग में सबसे अधिक आकर्षक होता है। इनके अतिरिक्त यह भूरे, हलके हरे, तथा आसमानी रंग में भी मिलता है। इसका रंगहीन विभेद हीरे के स्थान पर काम में लाया जाता है और सबसे अधिक प्रसिद्ध है, यह हलके आसमानी रंग में मिलता है, रंगों के कारण इसको देखकर, हीरा, कुरुविन्द, कंटकिज आदि का भ्रम हो सकता है। गोमेद या जर्कन के नाम से प्रसिद्ध रत्नों के गुण एक दूसरे से इतने भिन्न होते हैं कि इसके तीन वर्ग किये गये हैं—१. उच्च वर्ग २. मध्यवर्ग तथा ३. निम्नवर्ग। तीनों प्रकार के गोमेदों के कठोरता, आ० घ०, प्रकाशीय विशेषताएँ तथा ताप व्यवहार आदि गुण अलग-अलग हैं।

उच्च वर्गीय गोमेद—यह गोमेद ही सामान्यतया प्रसिद्ध गोमेद है, इसका रवा चतुष्कोण होता है। ऊपर दिये गये भौतिक गुण इसी वर्ग के रत्न के हैं। इसकी द्विवर्णिता इतनी अधिक होती है कि अकेली आंख से ही दीख जाती है। इसमें दो रंग, नीला और श्वेत; दिखायी देते हैं। सरलता से चिरता नहीं है। अपकिरणन भी इसका हीरे से थोड़ा ही कम, .०३८, है। इसलिये यह खूब दमकता है।

निम्न वर्ग का गोमेद—इसका रूप रवे का रूप नहीं होता। यह हरे रंग की झांइयों में मिलता है। भूरे और नारंगी रंगों में भी पाया जाता है। उच्चवर्ग के गोमेद की अपेक्षा इसके वर्तनांक कम हैं। द्विवर्णिता बहुत कम है।

मध्यम वर्ग का गोमेद—यह गोमेद गुणों में उपर्युक्त दोनों के बीच का होता है। यह गहरे लाल रंग और भूरापन लिये हुए लाल रंग का होता है। गरम करने पर दुहरे वर्तन, वर्तनाँक तथा दड़क में कुछ परिवर्तन होकर यह उच्च वर्ग का गोमेद बन जाता है।

गोमेद रत्न इतने विविध रंगों में पाये जाते हैं कि उनके नाम अलग-अलग हैं। लाल से लेकर लाल झांई वाले भूरे गोमेद अंग्रेजी में जैसिंथ (Gacinth) और पीताभ पीले रत्न जागुर्न (Gargoon) कहलाते हैं। रंगरहित गोमेद तो पीले अथवा भूरे रत्नों को गरम करने से ही बनते हैं। रंगीन रत्न कभी-कभी धुंधले होते हैं—परन्तु इन में 'जाज्वल्यमानता' साफ दिखायी देती है। रंग रहित अथवा श्वेत तो चमक में हीरे का मुकाबला करते ही हैं। दुरंगी चमक केवल नीले में ही दिखायी देती है।

स्रोत तथा प्राप्तिस्थान—गोमेद सायेनाइट शिला में काफी मात्रा में पाया जाता है; यों ही एक ही स्थान से बहुत अधिक मात्रा में यह प्रायः नहीं मिलता। अभी तक सबसे अधिक भारी रवा जो मिला है, उसका तोल २५ पौंड था। गोमेद रत्न गोल चिकने पत्थरों और पानी में घिसे रत्नों के रूप में पानी से घुलकर नीचे बैठी तलछट में मिलता है। ऐसी तलछट श्री लंका, क्वींस लैंड (आस्ट्रेलिया) तथा थाईलैंड में विशेष रूप से पायी जाती है।

श्री लंका से जो गोमेद मिलते हैं—वे सबसे सुन्दर गोमेद रत्न होते हैं। यहाँ के रंगहीन गोमेद आज भी 'मैतुरा' हीरे के नाम से

प्रसिद्ध हैं; पहले तो इन्हें हीरा ही समझा जाता था। **न्यू साउथ वेल्स** के मड़गी स्थान से सुन्दर लाल रंग के गोमेद मिलते हैं। पीले-भूरे गोमेद दक्षिणी अफ्रीका की किंबरली खानों में हीरों के साथ होते हैं। **भारत** तथा श्री लंका में भी सुन्दर नीले और नीले-हरे गोमेद होते हैं। इनमें द्विवर्णिता होती है और इस प्रकार बैंजनी तथा पीले दो रंग यहां दिखायी देते है। एक लेखक के अनुसार **बर्मा** (मोगोक) के गोमेद में पानी तथा लोच अधिक होते हैं—श्याम आभा थोड़ी होती है। ये रत्न सर्वोत्तम जाति के माने जाते हैं। परन्तु यह माल बहुत कम निकलता है।

श्रेष्ठ गोमेद—'रसेन्द्र चूड़ामणिकार' के लेखनानुसार गाय की मेद अर्थात् चरबी के रंग का, हलके पीले वर्ण का, रत्न गोमेद कहलाता है। श्रेष्ठ तथा गुणकारी गोमेद वह है जिसमें निर्मल गोमूत्रकी-सी आभा हो; चिकना, स्वच्छ, समडोल, भारी, दल रहित, (परतदार न हो) मृदु और प्रकाशवान् हो।

दोष—जो गोमेद दूर से स्वच्छ गोमूत्र के समान न प्रतीत होता हो, परतदार हो, दड़कदार न हो, पीले कांच-खण्ड सा दिखायी देता हो, वह गोमेद अच्छा नहीं होता।

असली-नकली में अन्तर—श्वेत गोमेद और हीरे में भ्रम पैदा हो जाया करता है। वर्तनांक तथा अपकिरणन ऊँचा होने के कारण दमक में यह हीरे की बराबरी करता है। परन्तु इसका आ. घ. हीरे से बहुत अधिक होता है और चमक भी हीरक द्युति न होकर विरोजा-जैसी होती है। इसके पिछले भाग के अनीक, दुहरेवर्तन के कारण, दुहरे दिखायी देते है। गोमेद की बराबरी के दूसरे रत्न **स्फीन**–की कठोरता ५.५ है जो गोमेद से बहुत कम है। कभी-कभी अनिच्छित रंग वाले हीरे के पिछले तल पर नीले रंग की झोल फेर देते है। परन्तु बेंजीन, स्पिरिट अथवा निरे गर्म पानी, में धोते ही इसका रंग उड़ जाता है।

'आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार किसी पात्र में दूध के साथ जिस गोमेद को रखने से वह दूध गोमूत्र के से रंग का दिखायी दे और कस पर घिसने पर भी जिसकी कान्ति वैसी की वैसी बनी रहे, कम न हो; वह गोमेद उत्तम जाति का माना जाता है। **कई लोग** गोमेद का दूसरा नाम **अकीक** बताते हैं; परन्तु गोमेद एक-से, एक ही रंग का होता है और अकीक के पत्थर कई-कई रंग के होते हैं।

रोगों में प्रयोग—आयुर्वेद ग्रन्थों के अनुसार गोमेद कफ-पित्त को नष्ट करता है; क्षय तथा पाण्डुरोग को दूर भगाता है; दीपक, पाचन, रुचि वर्धक, त्वचा की कांति तथा बुद्धि के वैभव को बढ़ाता है। अनपच, मस्तिष्क की दुर्बलता तथा चमड़ी के रोगों में लाभदायक रहता है।

दैवी शक्ति—कुम्भ राशि में सूर्य के आने पर अर्थात् १५ फरवरी से १४ मार्च तक की अवधि में उत्पन्न व्यक्तियों का प्रतीक ग्रह राहु है। इन्हें गोमेद का धारण करना इष्ट है। किसी सुधरे ज्ञानवान् ज्योतिषी से अपनी जन्म कुण्डली सुधरवाकर, उसकी सम्मति से ही राहुरत्न, गोमेद, धारण करना चाहिये, (देखि इसी पुस्तक के पृष्ठ ५३ से ६८ पृष्ठ तक)। राहु रत्न को धारण करने का मंत्र इस प्रकार है :—

ॐ। कया नश्चित्र आ भुव दूती सदा वृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥

धारण करने के लिये गोमेद काभार ६, ११ अथवा १३ कैरेट हो, ७, १० अथवा १६ रत्ती कभी न हो।

बदल—'तुरसावा' उपरत्न इसका बदल है। यह नरम तथा कम दड़क (आ. घ.) का उपरत्न है। पीतरक्त आभा वाला होता है; किसी-किसी में मलिनता तथा हरी झांई भी होती है।

केतुरत्न—लहसनिया

: ९ :

बिल्ली की आंख के समान पीला सा, तथा लहराते सफेद डोरे वाला, वायुगोला तथा पित्त प्रधान रोगों का नाशक; सरकारी रोष, आकस्मिक दुर्घटना व गुप्त शत्रुओं से बचाने वाला।

विविध नाम : **संस्कृत**—वैदूर्य, बिडालाक्ष, अभ्ररोह, राष्ट्रक, मेघखराकुंर, बाल सूर्य, विदुर रत्न आदि।

हिन्दी-पंजाबी—वैदूर्य-लहसनिया, **उर्दू-फारसी**—लहसनिया अंग्रेजी Cat's-Eye या Cymophane.

भौतिक गुण—आपेक्षिक घनता-३.६८ से ३.७८ तक, कठोरता—८.५० ; वर्तनाँक १.७५० ; से १.७५७ तक ; दुहरावर्तन, मान—०.०१० : अपकिरणन—०.०१५ रचना घनात्मक है।

बिड़ालाक्ष अथवा साइमोफेन रत्न वैदूर्य अथवा हेम वैदूर्य की तीन किस्मों में से एक किस्म का नाम है। इसके विविध रंग अंधेरे में उसी प्रकार चमकते हैं जैसे कि बिल्ली की आंखें अन्धेरे में चमकती हैं। इसमें रेशम के समान चमक तथा हरा रंग होता है। कैबोशौंग काट में काटे जाने पर प्रकाश एक रेखा में केन्द्रित हो जाता है और फिर रत्न की सतह पर फैलता है। घुमाने पर प्रकाश की इस रेखा का स्थान वदल जाता हैं और इस प्रकार बिल्ली की आँखों—जैसा दीखने लगता है। यह रत्न बहुत लोक-प्रिय हो चला है। रासायनिक संगठन की दृष्टि से यह बैरिलियम का ऐल्यूमिनेट है।

स्रोत तथा प्राप्तिस्थान—यह मणि पेग्मेटाइट, नाइस तथा अभ्रकमय परतदार शिलाओं में पायी जाती है। नालों की तल-छटों में भी यह पायी जाती है। यह रत्न **श्री लंका**, ब्राजील तथा चीन में पाया जाता है। बर्मा की मोगोक खान का बेडूर्य उत्तम माना जाता है। त्रिवेन्द्रम (दक्षिण भारत) से भी

यह रत्न मिलता है। ब्रिटिश संग्रहलाय में क्राइसौलाइट के साथ ३५.५ मिलीमीटर लम्बा तथा ३५ मिलीमीटर चौड़ा का एक सुन्दर बिडलाक्ष भी रखा हुआ है।

एक अद्वितीय विशेषता—बिड़ालाक्ष की एक अनुपम विशेषता इसका बिड़ालाक्षि प्रभाव है। इस रत्न को जब-जब हिलाया-डुलाया जाता है तो इसमें से दूधिया-सफेद, नीली सी अथवा हरीसी-सफेद अथवा सोने की सी पीली चमक निकलती है। यह विशेषता सिर पर से उन्नतोदर अथवा गुम्वद के आकार में काटने पर खूब अधिक हो जाती है। सूर्य के प्रकाश में अलटा-पलटी करने पर इसमें चांदी की पतली तार जैसी श्वेत रेखा दिखायी देती है।

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में वैदूर्यमणि के लिये लिखा है :—

एकं वेणु-पलाश-पेशलरुचा मायूर-कण्ठत्विषा
मार्जारेक्षण पिङ्गलछविजुषा ज्ञेयं त्रिधा छायया।

अर्थात् उत्तम वैदूर्यमणि के तीन भेद हैं—१ एक वह जिसमें बांस और ढाकके पत्ते के समान कांति झलके; २; दूसरी वह जिस की छाया मोर के कण्ठ की छाया जैसी हो और ३ तीसरी वह जिस में बिल्ली के आंख की छवि-सरीखी पिंगल वर्ण की छाया हो,

श्रेष्ठ-बिडालाक्ष—जो लहसनिया काली तथा श्वेत आभा लिये हुआ हो; स्वच्छ हो; दड़कदार हो, खिलवाँ हो; बीचों बीच श्वेत बादल से लहराते श्वेत दुपट्टे के समान श्वेत रेखा वाला हो, वह शुभ कहलाता है। यह श्वेत सूत जितना चमकदार और सीधा हो, गोमेदक उतना ही अधिक उत्तम माना जाता है। कभी-कभी यह सूत नहीं होता, प्रकाश फैला हुआ रहता है। इसको चादर कहते हैं। सूतरहित वैडूर्य को करकेतक (Chrysolite) कहते हैं। जो कस पर घिसने से स्वच्छ प्रतीत होता हो वह उत्तम तथा शुभ माना जाता है।

दोषयुक्त—केवल कालीझांई वाला, पानी जैसा दिखायी देने वाला, चिपटा हुआ, दड़करहित, किरकिरा, डोरी में ललाई लिये

हुआ गोमेद अशुभ या खोटा कहलाता है। एक दूसरे ग्रन्थ के अनुसार चमक न होना, मिट्टी तथा पत्थर के भाग का बीच में होना, टेढ़ाहोना, चिपटापन आदि दोष गिनाये गये हैं।

रोगों में प्रयोग—आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार, वैदूर्य रत्न गर्म, खट्टा, कफ़-वायु के प्रकोप को शान्त करने वाला, वायु गोला आदि रोगों का नाशक है। पित्त प्रधान सभी रोग भी नष्ट करता है।

दैवीगुण—केतु प्रभावाधीन उत्पन्न व्यक्तियों को यह रत्न धारण करना चाहिये। अर्थात् वे व्यक्ति जो मीनराशिस्थ सूर्य के समय अर्थात् १५ मार्च से १४ अप्रैल तक जन्मे हो इसको पहनते हैं। केतु के अनिष्ट प्रभाव को कम करने के लिये उन्हें चाँदी में ३, ५ अथवा ७ कैरट का विडालाक्ष धारण करना चाहिये। इस समय निम्नलिखित मंत्र का जाप करना चाहिये।

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्या अपेशस्रे समुषदिभ रजायथाः ॥

धारण करने के लिये विडालाक्ष का तोल २, ४, ११ अथवा १३ रत्ती कभी नहीं होना चाहिये।

रत्न धारण करने वाला सरकारी दण्ड, आकस्मिक दुर्घटनाओं तथा गुप्त शत्रुओं से सुरक्षित रहता है।

प्राचीनों का विश्वास था कि वैदूर्यमणि आनेवाले रोग की सूचना पहले ही दे देती है; इसमें वैज्ञानिक कारण यह प्रतीत होता है कि कोई भी रोग हो वह त्वचा द्वारा शरीर का विष मुक्त करता है। ज़्वर में त्वचा सूख जाती है और जुकाम में गीली हो जाती है। वैदूर्यमणि सच्छिद्र होती है। अतः हाथ आदि पर तावीज़ के रूप में बांधी हुई वैदूर्य मणि पर शरीर के तापमान अथवा आर्द्रता आदि का प्रभाव पड़ता है और वह अपना रंग तथा वर्ण बदल लेती है।

जन्म कुण्डली के अनुसार धारण करने के लिये इस पुस्तक के पृष्ठ ५३ से ६८ तक का प्रकरण पढिये और किसी प्रवीण ज्योतिषी की सहायता लीजिये।

बदल—इसका बदल इसका उपरत्न गोदन्ती है।

प्रसिद्ध उप रत्नों का परिचय

विक्रान्त की विचित्रता—एक ही खण्ड लाल भी हरा भी;—हीरे का स्थानापन्न ; फिरोजा के फीका पड़ने का कारण; कांच और बिल्लौर में अन्तर; अक़ीक़ की विशेषता-धारियाँ;

विक्रान्त—संस्कृत में वैक्रान्त, विकृन्तक, और क्षुद्र कुलिश के नाम से प्रसिद्ध इस उपरत्न के विषय में आजकल संदेह उत्पन्न हो गया है। परन्तु फिर भी विद्वान् बहुमत से 'टूर्मलीन' नाम से प्रसिद्ध खनिज पत्थर को ही विक्रान्त मानते हैं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार टूर्मलीन एक षड़भुज रवा है—इसके वर्तनांक १·६२४ तथा १·६४४ है। दुहरावर्तन लगभग .०२० आ. घ. ३.०६ है। यह पत्थर अपनी द्विवर्णिता के लिये प्रसिद्ध है। गहरे हरे रंग के पत्थर में अत्यन्त गहरा भूरा-सा हरा और हलका पीताभ हरा ये दो रंग; नीले टूर्मलीन में हलका तथा गहरा हरा—ये दो रंग दिखायी देते हैं। इसकी कठोरता ७ से ७·५ है और अपकिरणन बहुत कम है।

यह अपने बहुत सारे विविध रंगों के लिये प्रसिद्ध है—अर्थात् हलके से गहरे लाल रंग और नीलारुण (बैंजनी-सा) रंग के; पीताभ—हरे ; भूरे; हरे-से भूरे; बिना रंग के ; काले ; हलके से गहरे आसमानी रंग के; पीले-भूरे; और भूरे-से नारंगी रंग के विक्रान्त मिलते हैं। **फिर एक ही रत्नखण्ड में दो रंगों के**—प्रायः लाल और हरे—वैक्रान्त भी खूब पाये जाते हैं। रत्न रूप में पार-दर्शक ही अच्छा समझा जाता है; परन्तु आभूषणों में अपारदर्शक काला भी खूब चलता है। अपने भौतिक गुणों के द्वारा यह दूसरे रत्नों से शीघ्र ही पृथक् पहचान में आ जाता है।

गुण कर्म—आयुर्वेद में यह हीरे का स्थानापन्न है। वैक्रान्त भस्म का प्रयोग ज्वर, कोढ़, पाण्डुरोग, सूखा रोग, पागलपन, प्रमेह, सांस

तथा खांसी में होता है।

२. **फ़िरोजा**—संस्कृत में इसको पेरोज तथा हरिताश्म कहते हैं, हिन्दी में फिरोजा और अंग्रेजी में Turquoise कहते हैं। यह एक अर्ध-पारदर्शक से लेकर अपारदर्शक तक रत्न खनिजहै। इसकी सब से बढ़िया किस्म बहुत ही हलके आसमानी रंग की और घटिया किस्म पीली-सी हरी होती है। बढ़िया भी पहनने के कुछ समय बाद हरा-सा आसमानी हो जाता है। कृत्रिम रंग देकर इसको निखार दिया जाता है परन्तु तेज अमोनिया जल से धोते ही बनावटी रंग उड़ जाता है। फिरोजा पहनने वाले को साबुन से स्नान करते समय इसको उतार कर रख देना चाहिये—साबुन से इसका **रंग** फीका पड़ जाता है।

प्रयोग—यह सब प्रकार के विष के प्रभाव को दूर करता है; खून की खराबी तथा नेत्र रोगों में भी लाभदायक है।

परीक्षा विधि—प्लास्टिक, पैरीफीन, मोम तथा तैल भरकर कृत्रिम फिरोजा बनाया जाता है। लाल गरम की हुई सूई की नोक इनके पास लाने से प्लास्टिक में से सड़े अंडे की सी बदबू आने लगती है और पैराफीन आदि पिघलकर बह जाती है।

स्फटिक वर्ग के उपरत्न—स्फटिक वर्ग रत्नों का सबसे अधिक बड़ा वर्ग है। इसमें बहुत से खूब प्रचलित रत्न आ जाते हैं। व्यापारिक दृष्टि से इनका मूल्य अधिक नहीं है परन्तु फिर भी ये बड़े रोचक रत्न हैं तथा बहुत पुराने जमाने से काम में आ रहे हैं।

रंगों तथा किस्मों में अलग-अलग होते हुए भी ये सभी सिलिका के ऑक्साइड हैं। इनके भौतिक गुण लगभग एक-से हैं। कुछ महत्त्व पूर्ण स्फटिक-रत्नों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

३. **स्फटिक** या बिल्लौर सामान्यतया स्फटिक नाम से जिस पदार्थ को समझा जाता है, संस्कृत में उसका नाम **सितोपल**, **शिवप्रिय** है। हिन्दी में इसको **काचमणि**, गुजराती में **फटक** और अंग्रेजी में Rockcrystal कहते हैं।

यही एक रंगरहित उपरत्न है जो बहुत भारी मात्रा में मिलता है। यों तो इसमें से 'ज्वाला' नहीं फूटती और 'निर्जीव' सा लगता है, परन्तु सावधानता से काटने तथा पालिश कर देने पर खूब सुन्दर निकल आता है। आभूषणों के अतिरिक्त ऐनकों के लैंस भी इससे बनते हैं तथा प्रकाश सम्बन्धी दूसरे यंत्रों में भी काम में आता है।

कांच तथा बिल्लौर में अन्तर—छूने पर यह कांच से अधिक ठंढ़ा लगता है; इससे अधिक कठोर तथा इसके पहलों के किनारे कांच के किनारों की अपेक्षा अधिक नोकदार तथा अधिक सफाई से कटे होते हैं। कांच की चमक के समान इसकी चमक कभी मन्द नहीं पड़ती।

चिकित्सा की दृष्टि से यह मधुर, शीत, बल्य तथा पित्तनाशक है। बुखार, जलन, रक्तपित्त तथा दुर्बलता में इसकी भस्म दी जाती है।

४. **अक़ीक़**—संस्कृत में इसका नाम **रक्ताश्म** तथा अंग्रेजी में Agate है। यह स्फटिक वर्ग के उन रत्नों में से है जो खूब प्रचलित है। **धारीदार होना इसकी बड़ी विशेषता है;** ये धारियां भले ही इतनी सूक्ष्म होती हैं कि सूक्ष्म वीक्षण यंत्र से ही दीख पड़ती हैं। सर डेविड ने एक ऐसे रत्नखण्ड में प्रति इन्च १७००० सुस्पष्ट धारियां देखी थीं। ये धारियां बहुत कुछ समान्तर होती हैं—कभी सीधी रेखाओं में और कभी समकेन्द्रिक वक्र रेखाओं में। इसका सारा सौन्दर्य धारियों के रंगों के मेल पर निर्भर है।

इनको कृत्रिम रंग देने का एक पृथक् उद्योग बना हुआ है, इसका प्रमुख स्थान जर्मनी है।

चिकित्सा में—अक़ीक का प्रयोग स्तम्भन तथा मेध्य औषधि के रूप में होता है। रक्तपित्त, प्रदर, शुक्रमेह तथा मानसिक रोगों में लाभदायक है।

५. **संग सुलेमानी**—इस रत्न-पत्थर में भी अक़ीक़ की तरह

रंगों की धारियां होती हैं जो सीधी और समांतर होती हैं। प्राचीन लोग इसके प्याले, फूलदान आदि बनाया करते थे। नगीने, मालाओं के दाने, चाकू की मूठें आदि बनाने का उद्योग आजकल भी खूब होता है।

गुण—इसके अक़ीक से मिलते-जुलते हैं—यह केवल एक प्रकार से उसकी ही एक किस्म है। **अन्तर** केवल इतना है कि इसके रंग में काली या भूरी झांई होती है। और इस पर श्वेत, हरे, भूरे और काले रंग के खण्ड होते हैं।

६. **संगेयशब**—यह भी एक पुराना और प्रसिद्ध रत्न-पत्थर हैं। संस्कृत में इसको **हरिताश्म**; हिन्दी में हरितमणि या **संगयशब**; फारसी में **यश्म**; और अंग्रेजी में 'जेड' (jade) कहते हैं।

इसकी दो किस्में हैं--१. **जेडीट** (jadeite) और **नेफ्राइट**। **जेडीट** का रंग सेव से हरे से लेकर पन्ने-जैसे हरे तक होता है। हरिताभ-सफेद और सफेद रंग का भी यशब पाया जाया है। प्रायः यह अपारदर्शक ही होता है। सफेद रंग के धब्बे होना अथवा रंग-विरंगा होना इसका दोष माना जाता है। चमक तैलीय होती है; हां इस पर चमक अच्छी आती है। बढ़िया यशब बहुत कम मिलते हैं। बढ़िया यूरोप तो कभी पहुँचते ही नहीं, क्योंकि सब चीन में ही खप जाते हैं। चीन में इसको बहुमूल्य रत्न माना जाता है—वहां इसका नाम यू (yu) है और बहुमूल्य रत्न को भी वे 'यू' ही कहते हैं। यशद बहुत कुछ रेशेदार होता है, इसलिये नक्काशी करना कठिन होता है। फिर भी चीन में इसपर नक्काशी खूब होती है।

७. **लाजावर्त**—संस्कृत में इसको **नृपोपल** और **नीलाश्म** भी कहते हैं। हिन्दी में **लाजवर्द** और अंग्रेजी में 'लेपिस लैज़ूल' Lapis Lazuli कहते हैं।

यह एक सुन्दर, खूब गहरा नीला, अपारदर्शक पत्थर है।

इस की सतह पर प्राय: पीतआभा बिखरी रहती है। बड़े-बड़े और सुन्दर रंग के पत्थर बहुत कम मिलते हैं।

इस पर नक्काशी अथवा इसमें छेद करना कठिन होता है। यह अपनी सारी देही में एक-सा कठोर नहीं होता। गरम करने पर इसका रंग उड़ जाता है जो ठंढ़ा होने पर लौट आता है। स्फुर-दीप्ति भी अनेक पत्थरों में पायी जाती है।

पहले जब इसकी बहुतायत थी तो फूलदान, तथा प्याले खूब बनाये जाते थे। गले के हार, चाकुओं की मूठें आदि आज भी बनती हैं। पुराने लोग इसको 'नीलम' ही कहा करते थे।

असली की पहचान—इसका चूरा, यदि जलमें डालने पर रंग न बदले तो इसको शुद्ध कहा जायेगा।

चिकित्सा की दृष्टि से—यह हृद्य, कटु, तिक्त, पित्तशामक दीपन और पाचन है। रक्तशोधक और आर्त्तवजनक है। सूखा रोग, फिरंग रोग, प्रमेह, पांडु तथा अन्य रक्त विकारों में इस की भस्म का प्रयोग किया जाता है।

८. **सूर्यकान्त**—तथा ६. **चन्द्रकान्त**—ये दोनों मणियां 'फैल्स्पार' वर्ग की हैं। इस समूह के खनिज विशेष महत्त्व के नहीं हैं। ये सभी एल्यूमिनियम तथा पोटाशियम, सोडियम अथवा कैल्शियम किसी एक अन्य धातु के सिलिकेट हैं।

सूर्यकान्तमणि—कांच के समान श्वेत परन्तु लाल-सा, सल्मे-सितारेटंगा रत्नपत्थर है। सूर्य की उपस्थिति में इससे अग्नि उत्पन्न होती है। यह मुख्यतया नौर्वे में मिलता है; फिनलैंड तथा बोहेमिया में भी इसकी खानें हैं।

चिकित्सा की दृष्टि से—यह उष्णवीर्य, मेध्य, रसायन तथा कफवात-नाशक है

चन्द्रकान्तमणि—पारदर्शक और रंग रहित रत्न पत्थर है। इस पर प्राय: दूध जैसी चमक होती है। इस की परतें बहुत भीनी होती

हैं—उनसे प्रकाश प्रतिक्षिप्त होकर दूधियापन उत्पन्न करता है। पीताभ पत्थर सस्ते होते हैं तथा सफेदी वाले सर्वथा मूल्य-रहित माने जाते हैं। इसकी चमक किन्हीं निश्चित दिशाओं में ही दीखती है। उत्कृष्टतर चमक के लिये इनको कैबोशौंग काट में काटा जाता है और पहल कभी नहीं बनाये जाते।

मुख्यतया लंका से प्राप्त होता है। चन्द्रमा की किरणों से यह गीला हो जाता है। **स्निग्ध; शीत** तथा **पित्तशामक** है। रक्तपित्त, दाह, ज्वर तथा हृदय रोग में प्रयुक्त होता है।

१०. **दूधिया पत्थर अथवा उपल**—यह सुन्दर पत्थर देखने में भी शेष रत्नों से अलग है। इसका नकली बनाना भी कठिन है; संश्लिष्ट तो अभी तक बनाया ही नहीं जा सका है। इसके एक रत्न खण्ड में विविध प्रकार के रंगों की एक विशेष प्रकार की चमक दीख पड़ती है। इस चमक का अपना अलग नाम 'उपल-भासा' रखा गया है।

अंग्रेजी में इसे 'ओपल' कहते हैं। हिन्दी मे इसका प्रसिद्ध नाम दूधिया पत्थर है। पहले इसका बड़ा आदर था परन्तु उन्नीसवीं शती में यह भाग्यविनाशक माना जाने लगा। अब जब से आस्ट्रेलिया से सुन्दर चमकीले रत्नोपल मिलने लगे, इसका फिर से चलन हो गया है। **आस्ट्रेलिया के दूधिया पत्थर एक क्षण में तो निपट काले और अगले ही क्षण में, थोड़ा हिलाने से ही,** चमकदार सिंदूरी ज्वाला छोड़ने लगते है।

इन रत्नों की बनावट रवेदार नहीं है। कठोरता ५.५ से ६.५ तक और आ. घ. १.९५–२.३ ही है। चमक इस की काँच जैसी मंद शैलीय होती है।

दूधिया पत्थर की दो किस्में हैं—काली तथा सफेद। दोनों से लाल चिंनगारियाँ सी फूटती है। अधिक लम्बी चिंनगारियों वालों का मूल्य अधिक नहीं आंका जाता।

दूधिया पत्थर की एक किस्म वह भी है कि जो है तो पारदर्शक, परन्तु उसमें उपलभासा नहीं दिखायी देती। ऐसे दूधिया पत्थर को 'कान्त-ओपल' (fire-opal) कहते हैं।

यह कठोर नहीं होता; इस पर खरौंच सहज ही में पड़ जाती है। तापसे इसका रंग बिगड़ जाता है। इसको 'कैबोशौंग' काट में काटा जाता है।

११. **रुद्राक्ष-अथवा रात-रतुआ** (Carnelian) भी एक प्रसिद्ध उपरत्न है। यह स्फटिक वर्ग में ही गिना जाता है। **कम गहरे लाल से नारंगी रंग तक का** होता है। यह अपने रंग के 'जेड' अथवा 'संगेयश्ब' तथा कान्त-रत्नोपल के सदृश होता है। इस की नकल कांच के रुद्राक्ष बनाकर की जाती है। प्राचीन काल में यह अदन, बसरा व भारत में मिलता था। आजकल श्रेष्ठ रुद्राक्ष काम्बे, सूरत और बम्बई से प्राप्त होता है। इस पर नक्काशी का काम बहुत सुन्दर होता है।

कहते हैं कि जिस को रात में ही बुखार आता हो उसके शरीर से स्पर्श करता रुद्राक्ष बाँधने से लाभ पहुँचाता है। यह नक्सीर को बन्द करता है। यह भी मान्यता है कि यह जिन व भूतों को भगा देता है।

१२. **संगसितारा (तारामंडल)**—अंग्रेजी में इस का नाम 'गोल्ड स्टोन' है। यह गेरुए रंग का रत्न है और इसमें सोने-सरीखे छींटे चमकते हैं। असली संगसितारे में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में पानी तथा हरी झांई रहती है; नकली में नहीं होती। स्फटिक की गुलाबी किस्म में ही तारामंडल दिखायी देता है। यह अर्धपार-दर्शक से पारभासी तक होता है और हल्के लाल रंग से बैंजनी-आभा लिये लाल रंग तक का मिलता है। कैबोशौंग काट में काटने पर खूब खिल जाता है।

१३. **लालड़ी-सूर्यमणि अथवा लाल कंटकिजमणि** (Spinel-Red)

इसको भ्रमवश 'स्पाइनेल रूबी–कंटकिज माणिक्य भी कहा जाता है।

कंटकिज या स्पाइनेल रत्नों का एक समूह है जिस में कई रंग की मणियां हैं; इनमें से लाल रंग की मणि लालड़ी कहलाती है। इसके गुण माणिक्य (लाल) के समान हैं। सूर्य की दशा में इस को चांदी में जड़वाकर रविवार को मध्यान्ह के समय धारण करते हैं। इसकी पिष्टी अनेक रोगों में काम आती है। इसमें कालिमा हो तो यही पत्थर 'नरम' कहाता है। कभी-कभी इसको श्याम माणिक्य समझ लिया जाता है परन्तु माणिक्य की अपेक्षा यह कोमल तथा हल्का होता है।

१४. **कार्कतक**——स्फटिक वर्ग का यह सुन्दर रत्न सेव के से हरे अथवा पीताभ हरे रंग का होता है और इसमें दरारें अथवा भूरे रंग के धब्बे आदि ऐब पाये जाते हैं इसका रंग कभी गहरा हरा नहीं होता, इसकी चमक हरितमणि (जेड अथवा संगेयश्ब) से भी अधिक मंद होती है। यह अर्धपारदर्शक अथवा पार भासक रत्न है। **इसको सबसे बड़ी कमी यह है कि धूप लगने पर या गर्मी पहुंचने पर रंग छोड़ ज़ाता है**

१५. **तृणमणि**—इसको अंग्रेजी में (Amber) कहते हैं यह खनिज पदार्थ नहीं, जैविक है। रंग इसका हल्के पीले से लेकर गहरा भूरा तक होता है। फिर इसको विविध रंगों में रंगा भी जाता है। नक़ली प्लास्टिक की तृणमणि नमकीन पानी में डूब जाती है, असली तैरती है। रगड़ने पर बिजली उत्पन्न हो जाती है। इसी-लिये हलके फुलके कागज व तिनके इसकी ओर खिचने लगते हैं; इसी आधार पर नाम **तृणमणि** है।

—०—

भूल सुधार—कृपया कु० स० ६ को कु० सं० ८ समझें और कु० सं० ८ के स्थान पर कु० सं० ९ पढें।

दैवी

दविध

सहित

मूंगा
नीलम

(४)
) संग
पत्थर
(११)
डमणि

विषय-सूची (संक्षिप्त)